संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
१ जुलाई २०१०
वर्ष : २० अंक : १
(निरंतर अंक : २११)

गुरुपूर्णिमा
विशेषांक

भगवत्पाद सद्गुरु स्वामी
श्री श्री लीलाशाहजी महाराज

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

मेरे सद्गुरु मेरे लिए संतशिरोमणि हैं, वे संत-समुदाय के राजाधिराज हैं। मेरे प्राणों के आश्रय हैं। तीनों लोकों में सद्गुरु जैसा दूसरा कोई देव देखने में नहीं आया।

॥ गुरुपूर्णिमा ॥
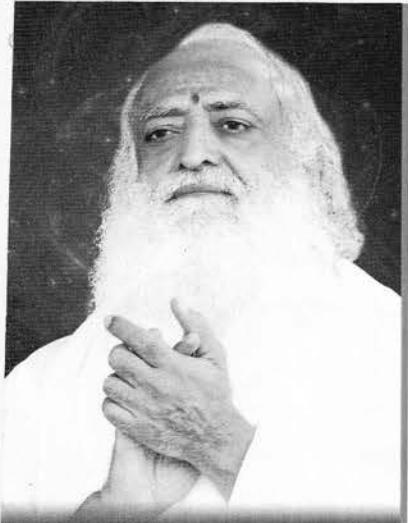
लघु को गुरु बना देना, छोटे को बड़ा बना देना, वामन को विराट बना देना, जीव को शिव के साथ एकाकार कर देना - यही गुरुपूर्णिमा का उद्देश्य है ।

गुरुदेव कह रहे हैं : ''हे जीव ! हे वत्स ! अब तू तेरे निज शिव-स्वभाव की ओर आ जा । अब तू प्रगति कर । ऊपर उठ । कब तक प्रकृति, जन्म-मृत्यु और दुःखों की गुलामी करता रहेगा !

गुरुपूर्णिमा का यह उत्सव उत्थान के लिए आयोजित किया गया है । तू विलम्ब किये बिना इस उत्सव में आकर अत्यंत आनंदपूर्वक भाग ले । आ जा... आ जा... तू तेरे अपने सिंहासन पर आकर बैठ जा । साधक कोई डरपोक सियार या गरीब बकरी नहीं है, साधक तो सिंह है सिंह ! आध्यात्मिक सत्संग में उमंगपूर्वक आनेवाले साधक के लिए तो गुरु का हृदय ही सिंहासन है । उस सिंहासन पर तू आरूढ़ हो । तू अपनी महिमा में आ जा । तू आ जा अपने आत्मभाव में...

वत्स ! तू तेरे उत्कृष्ट जीवन में ऊपर उठता जा । प्रगति के सोपान एक के बाद एक तय करता जा । दृढ़ निश्चय कर कि अब अपना जीवन दिव्यता की तरफ लाऊँगा ।''

दया के सागर, कृपासिंधु वेदव्यासजी को हम नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं । ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं को हम व्यास कहते हैं । उन्होंने मानव-जाति का परम हित करने के लिए ऐश-आराम, ऐन्द्रिक आकर्षण का, सबका त्याग करके जीवनदाता के साथ एकत्व साधा और जीवन के सभी पहलुओं को देख लिया । उन्होंने जीवन का उज्ज्वल पक्ष भी देखा और अंधकारमय पक्ष भी देखा। आसुरी भावों को भी देखा, सात्त्विक भावों को भी देखा और इन दोनों भावों को सत्ता देनेवाले भावातीत, गुणातीत तत्त्व का भी साक्षात्कार किया । ऐसे आत्मज्ञानी महापुरुषों से लाभ लेने का पर्व, उनके और निकट जाने का पर्व है गुरुपूर्णिमा ।

दूसरे उत्सव तो हम मनाते हैं किंतु गुरुपूर्णिमा का पर्व हमें हमारे उत्कर्ष के लिए मनाता है ।

गुरुदेव कहते हैं : ''हे बंधु ! हे साधक ! तू कब तक संसार के गंदे खेलों को खेलता रहेगा ! कब तक इन्द्रियों की गुलामी करता रहेगा ! कब तक तू इस संसार का बोझ वहन करता रहेगा ! कब तक अपने अनमोल जीवन को मेरे-तेरे के कचरे में नष्ट करता रहेगा ! जाग... जाग... जाग... अब तो जाग... अहंकार को लगा दे आग और निजस्वरूप में जाग... लगा दे विषय-विकारों को आग और निजस्वरूप में जाग ! लगा दे जीवत्व को आग और शिवस्वरूप में जाग !

तू अभी जहाँ है वहीं से प्रगति कर । उठ, ऊपर उठ । जैसे वायुयान पृथ्वी को छोड़कर गगन में विहार करता है, ऐसे ही तू मन से देहाध्यास छोड़कर ब्रह्मानंद के विराट गगन में प्रवेश करता जा । ऊपर उठता जा । विशालता की तरफ आगे बढ़ता जा ।

अरे ! कब तक इन जंजीरों में जकड़ा रहेगा ! जंजीर लोहे की हो या ताँबे की या फिर भले सोने की हो परंतु जंजीर तो जंजीर है । स्वतंत्रता से वंचित रखनेवाली पराधीनता की बेड़ी ही है । **(शेष पृष्ठ ५ पर)**

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका
हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़, अंग्रेजी व सिंधी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : २० अंक : १
भाषा : हिन्दी (निरंतर अंक : २११)
१ जुलाई २०१० मूल्य : रु. ६-००
आषाढ़-श्रावण वि.सं. २०६७

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद -३८०००५ (गुजरात).
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रिज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद- ३८०००९ (गुजरात).
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २२५/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(सभी भाषाएँ)

(१) वार्षिक	: रु. ३००/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. ६००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. १५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 40	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट ('ऋषि प्रसाद' के नाम अहमदाबाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

सम्पर्क पता

'ऋषि प्रसाद', संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात).
फोन नं. : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

इस अंक में...

संतवाणी

बात दो टूक, पर है सच्ची !

– स्वामी श्री अखंडानंदजी सरस्वती

गुरु की आवश्यकता क्यों ?

यूँ तो प्रत्येक ज्ञान में गुरु की अनिवार्य उपयोगिता है परंतु ब्रह्मज्ञान के लिए तो दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। गुरु के बिना उपासना-मार्ग के रहस्य मालूम नहीं होते और न उसकी अड़चनें दूर होती हैं। जो उपासना करना चाहता है, वह गुरु के बिना एक पग भी नहीं बढ़ सकता। गुरु के संतोष में ही शिष्य की पूर्णता है। एक दृष्टांत कहता हूँ - मेरे बचपन का एक मित्र था। हम दोनों वर्षों से मिले नहीं किंतु पत्र-व्यवहार चलता था। एक बार मैं उसके घर गया पर उसने पहचाना नहीं। मैंने अपना नाम नहीं बताया और उसके साथ खुला व्यवहार करने लगा। वह तो हैरान हो गया। इतने में किसीने मेरा नाम ले दिया तो आकर गले से लिपट गया। अब देखो कि मैं उसके सामने प्रत्यक्ष था परंतु नेत्रों के सामने होना एक बात है और पहचानना दूसरी वस्तु है।

हमारा आत्मा जो ब्रह्म है, हमसे कहीं दूर नहीं है। सदा सोते-जागते, उठते-बैठते अपने साथ है। यह नित्य प्राप्त है। इसमें वियोग की सम्भावना नहीं है। परंतु ऐसे नित्य प्राप्त आत्मा को हम पहचान नहीं रहे हैं। यदि इसमें स्थित होने से इसकी पहचान होती तो सुषुप्ति में, समाधि में हो जाती। पास रहते हम इसे पहचान नहीं रहे हैं तो बतानेवाले की आवश्यकता है। जब तक कोई बतायेगा नहीं कि 'वह ब्रह्म तो तू ही है' तब तक उसका ज्ञान नहीं होगा।

उस ब्रह्म को आत्मरूप से जानने के लिए साधन-सम्पन्न जिज्ञासु हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाय।

सद्गुरु प्राप्त हो जायें तब क्या करें ?

तब उनकी विनय से सेवा करें और उसके प्रति प्रेम करें। उनमें दोषबुद्धि न करें और उनके महत्त्व को हृदयंगम करके उनसे ही अपने कल्याण की आशा करें। इस प्रकार सेवा और भक्ति से सद्गुरु को अपने अनुकूल बनायें।

जब तक हम सद्गुरु को भगवान के रूप में नहीं देख पाते, उनसे प्रवाहित होनेवाले भगवद्ज्ञान को स्वीकार नहीं करते और उनकी प्रत्येक क्रिया हमें लीला के रूप में नहीं मालूम होने लगती, तब तक गुरुकरण नहीं हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। सद्गुरु मानने के पश्चात् उन्हें भगवान से नीचे कुछ भी समझना पतन का हेतु है। इस भगवद्स्वरूप में वे ही एक हैं, जगत के और जितने भी गुरु हैं वे मेरे गुरु के लीलाविग्रह हैं। सर्वत्र उन्हींका ज्ञान और उन्हींका अनुग्रह प्रकट हो रहा है।

मंत्रदान के पश्चात् गुरु की मनुष्यरूप में प्रतीति होना, यह तो शिष्य की एक कल्पना है। वास्तव में गुरु परमात्मा ही हैं। इन गुरु की शरण और इनके करकमलों की छत्रछाया पाकर शिष्य धन्य-धन्य हो जाता है।

सद्गुरु के प्रति शिष्य के हृदय में जितनी श्रद्धा, प्रेम और उनके महत्त्व का ज्ञान होता है, उसीके अनुसार उनसे शिष्य का व्यवहार होता है। जिह्वा पर 'गुरु' शब्द के आते ही शिष्य गद्गद हो जाता है। गुरु का स्मरण करानेवाली वस्तु को देखकर वह लोट-पोट होने लगता है। गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं, गुरु साक्षात् भगवान हैं, गुरु की पूजा ही

भगवत्पूजा है। गुरु, गुरुमंत्र और इष्टदेवता ये तीन नहीं एक हैं। शिष्य अधिकारहीन होने पर भी यदि सद्गुरु की शरण में पहुँच जाय तो वे उसे अधिकारी बना लेते हैं। पारस तो लोहे को ही सोना बनाता है अन्य धातु को नहीं, पर सद्गुरु अधिकारहीन को भी अधिकारी बनाकर परम पद दे देते हैं।

जिस शरीर से सद्गुरु की प्राप्ति हुई है, उस शरीर के प्रति अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट की जाय ?

उस शरीर को परमात्मा की, सद्गुरु की सेवा में लगा दिया जाय - यही कृतज्ञता है। सेवा क्या है ? पाँव दबाने का नाम सेवा नहीं है, न पानी भरने का; उनके विचार में अपना विचार, उनके संकल्प में अपना संकल्प, उनकी पसंदगी में अपनी पसंदगी मिला देने का नाम सेवा है, यही सच्ची सेवा है। सेवा अपने मन की पसंद नहीं है, जिसकी सेवा की जाती है उसकी पसंद है। सद्गुरु के प्रति अपने जीवन को समर्पित कर देना ही कृतज्ञता है और यही भगवान की भी सेवा है।

गुरु और इष्ट एक ही हैं - यह बुद्धि कैसे हो ?

आत्मा और परमात्मा एक ही हैं, ज्यों-ज्यों इस बुद्धि के निकट पहुँचते जायेंगे त्यों-त्यों गुरु और परमात्मा की एकता समझ में आती जायेगी। ईमानदारी से देखो कि आप कितनी गहराई के साथ शालग्राम की शिला को परमात्मा समझते हो। जयपुर से या वृंदावन से गढ़ी हुई जो मूर्तियाँ निकलती हैं, उनको आप कितनी ईमानदारी, कितनी गहराई से साक्षात् भगवान समझते हैं। जब हम अपने आत्मा को सच्चाई और ईमानदारी से हड्डी, मांस के शरीर से अलग, क्रिया-प्रक्रिया से अलग, इच्छाओं एवं भिन्न-भिन्न विचारों से अलग और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से भी अलग जितनी सूक्ष्मता से समझेंगे, उतनी ही सूक्ष्मता में गुरु को समझेंगे। और जितनी सूक्ष्मता में अपने को और गुरु को समझेंगे, उतनी ही सूक्ष्मता में परमात्मा को समझेंगे। **(शेष पृष्ठ ८ पर)**

(मुख-पृष्ठ २ से 'गुरुपूर्णिमा' का शेष)

हे वत्स ! दीन-हीन बनकर कब तक गुलामी की जंजीरों में जकड़ता रहेगा ! गुलाम को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। कल्पनाओं की जंजीरें खींचने से न टूटती हों तो 'ॐ' की शक्तिशाली गदा मारकर इन्हें तोड़ डाल। ॐ... ॐ... ॐ...

अब जन्म-मरण के चक्कर को काट डाल। चौरासी लाख शीर्षासनों की परम्परा को तोड़ दे। तुझमें असीम बल है, असीम शक्ति है, अनंत वेग है, असीम सामर्थ्य है। ॐ... ॐ... ऊपर उठता जा, आगे बढ़ता जा।''

गुरुतत्त्व की प्रेरक सत्ता में निमग्न होनेवाले साधक, सत्शिष्य के अंदर गुरुवाणी का गुंजन होने लगा। अंदर से गुरुवाणी का प्रकाश प्रकट होने लगा और गुरु ने प्रेरणा दी कि 'हे वत्स ! तू जाग, जाग... लगा दे अपने बंधनों को आग ! निजस्वरूप में जाग ! सब चिंताओं एवं शंकाओं को छोड़ दे। इसलिए तो तुझे यह अत्यंत दुर्लभ मनुष्य-जन्म मिला है।

हे वत्स ! आ जा, मेरे राज्य में प्रेमपूर्वक पधार। मेरे इस विशाल साम्राज्य में तेरा स्नेहपूर्ण स्वागत है। मोक्ष के मार्ग पर चल। मुक्ति के धाम में आ पहुँच। आ जा स्वतंत्रता के साम्राज्य में।'

यह सचमुच में पावन उत्सव है, सुहावना उत्सव है, हमारे परम कल्याण का सामर्थ्य रखनेवाला उत्सव है। अन्य देवी-देवताओं का पूजन करने के बाद भी कोई पूजा बाकी रह जाती है, किंतु उन आत्मारामी महापुरुष की पूजा के बाद फिर कोई पूजा बाकी नहीं रहती।

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय।
सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होय ॥

दुनिया भर के काम करने के बाद भी कई काम करने बाकी रह जाते हैं। सदियों तक भी वे पूरे नहीं होते। किंतु जो ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु द्वारा बताया गया काम उत्साह से करता है, उसके सब काम पूरे हो जाते हैं। शास्त्र कहते हैं :

स्नातं तेन सर्वं तीर्थं दातं तेन सर्वं दानम्।
कृतं तेन सर्वं यज्ञं येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम्॥

जिसने एक क्षण के लिए भी ब्रह्मवेत्ताओं के अनुभव में अपने मन को लगा दिया, उसने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया, सब दान दे दिये, सब यज्ञ कर लिये, सब पितरों का तर्पण कर लिया। ❑

गुरु निष्ठा

कल्याण की गुरुनिष्ठा

अपने शिष्यों के साथ भ्रमण-जनजागरण करते हुए समर्थ रामदासजी जब महाराष्ट्र में कराड़ के पास मसूर नामक स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ उनके शिष्यों ने संकीर्तन-यात्रा निकाली। सभी शिष्य एवं भक्तजन भगवन्नाम का जयघोष करते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतने में मार्ग में स्थित आम के एक विशाल पेड़ की शाखा से धर्मध्वजा अटक गयी। दूर तक फैली वह शाखा इतनी नीचे झुकी हुई थी कि किसी तरह धर्मध्वजा आगे नहीं बढ़ पा रही थी। लोग सोचने लगे, 'ध्वजा को नीचे उतारकर आगे बढ़ना भगवद्-वैभव का अपमान करने जैसा होगा। अब क्या किया जाय ?'

सभीकी दृष्टि समर्थ रामदासजी पर टिक गयी। समर्थजी ने आदेश दिया : ''यह शाखा काट दो।''

उस शाखा के नीचे एक गहरा कुआँ था। उसे देखकर कुछ शिष्यों ने तो उस पेड़ पर चढ़ने की हिम्मत ही नहीं की। कुछ निष्ठावान शिष्य कुल्हाड़ियाँ लेकर पेड़ पर चढ़े तो समर्थजी के मन में अपने शिष्यों की निष्ठा परखने का विचार आया। उन्होंने आदेश दिया : ''शाखा पर बैठकर शाखा के मूल पर वार करना है।''

अब तो पेड़ पर चढ़े निष्ठावान शिष्य भी एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। एक-एक करके सभी शिष्य पेड़ से नीचे उतरे, सिवाय एक के। अब गहरे कुएँ के ऊपर स्थित उस शाखा पर डटा था समर्थ का नया शिष्य अम्बादास !

अम्बादास ने गुरुदेव को प्रणाम किया और बोला : ''जो आज्ञा गुरुदेव !''

अम्बादास उस शाखा पर बैठकर उसके मूल पर वार करने लगा।

समर्थ तो शिष्य की निष्ठा और आज्ञापालन में तत्परता देखकर भीतर से बहुत प्रसन्न हुए परंतु उनकी शिष्या वेणाबाई बोली : ''महाराज ! इस प्रकार तो शाखा के कटते ही अम्बादास कुएँ में गिर पड़ेगा !''

समर्थ बोले : ''गिरेगा तो गिरेगा !''

''गुरुदेव ! उसे तैरना भी नहीं आता।''

''तैरना नहीं आता तो डूबेगा, और क्या होगा !''

कुछ लोग कहने लगे : 'यह भी कोई परीक्षा लेने की रीत है ! शिष्य ज्यादा हो गये तो सीधे शब्दों में 'जाओ' कह देना चाहिए था।' उधर अम्बादास बेफिक्र होकर शाखा काटने में लगा हुआ था।

अब वह शाखा कटकर गिरने के कगार पर थी कि सभी लोग चिल्लाने लगे : ''अम्बादास ! बस करो, नीचे उतरो नहीं तो कुएँ में गिरोगे।''

अम्बादास बोला : ''यदि गिर गया तो क्या है ! हमारे गुरुदेव तो इस अथाह संसार-सागर से जीवों को तारते हैं तो फिर यह जरा-सा कुआँ उनके लिए क्या मायना रखता है ! यह गुरुदेव का कार्य है और वे ही सँभाल रहे हैं।''

इतने में वह शाखा कट गयी और अम्बादास, कुल्हाड़ी व शाखा, तीनों धड़ाम-से कुएँ में जा गिरे। सब शिष्य दौड़कर आये। समर्थ रामदास भी वहाँ आये। देखा तो पेड़ की वह शाखा इस प्रकार गिरी थी कि उसके ऊपरी भाग पर अम्बादास आराम से बैठा था, मानो किसी नाव में बैठा हो। उसे तो ऐसा लगा मानो किसी स्प्रिंगदार वस्तु पर छलाँग लगायी हो। कुएँ में पानी भी ज्यादा न था। अम्बादास को जरा-सी भी खरोंच नहीं आयी।

जब अम्बादास गिरा, तब दूसरे शिष्यों को ऐसा लगा था कि कहीं वह मर न गया हो किंतु जिसकी भक्ति दृढ़ हो, गुरु की बात मानता हो वह शिष्य भी कहीं अकाल मौत मर सकता है !

गुरुजी की आज्ञा से सबने मिलकर अम्बादास को बाहर निकाला। देखा तो एक नाखून तक को जरा-सी भी चोट नहीं आयी थी।

समर्थ बोले : ''बेटा ! तुझे जरा-सा भी नहीं लगा न ?''

अम्बादास ने कहा : ''गुरुदेव ! सब आपकी दया है। आपने मेरा कल्याण कर दिया।''

समर्थ बोले : ''बेटा ! मैंने तेरा कल्याण नहीं किया, बल्कि तूने मेरे सत्संग को ध्यान से सुना। तू नियमानुसार जप-ध्यान करता है। सावधानी से कार्य करता है, अतः प्रकृति की इस दुर्घटना के होने पर भी मेरे भगवान ने तुझे बचा लिया। मैंने तो क्या कल्याण किया बेटा ! तेरी श्रद्धा-भक्ति ने, तेरी तत्परता ने, तेरी दृढ़ता ने ही गुरुकृपा, भगवत्कृपा जागृत कर दी। आज से तेरा नाम मैं 'कल्याण' रखता हूँ।''

अब अम्बादास 'कल्याण' के नाम से जाना जाने लगा। समर्थ रामदास यात्रा करते जा रहे थे। एक बार कल्याण को लेकर किसी गाँव से रवाना हुए। गाँव दो-तीन मील पीछे रह गया। समर्थ रामदास ने कहा : ''बड़े तो लाया है लेकिन ये सूखे-सूखे बड़े दूध में भिगोकर खाते तो अच्छा रहता। गाँव तो पीछे रह गया, कल्याण ! अब क्या करें ?''

कल्याण : ''गुरुदेव ! आप यहाँ आराम कीजिये, मैं अभी दूध लेकर आता हूँ।''

रामदास : ''बेटा ! बहुत देर हो चुकी है, लोगों ने दूध दुह लिया होगा।''

कल्याण : ''गुरुदेव ! मैं अभी लेकर आता हूँ।''

कल्याण लोटा लेकर गाँव की ओर जाने लगा। गाँव में एक लँगड़ी गाय को एक महिला दुहने गयी। गाय कुछ शैतान थी। उस महिला ने गाय को ताड़ना चाहा तो वह भड़की, कूदी और रस्सी तोड़कर भाग निकली। वह महिला भी लकड़ी लेकर पीछे दौड़ी। गाय उसी दिशा में भाग रही थी, जिस दिशा से समर्थ का शिष्य कल्याण लोटा लेकर आ रहा था। दौड़ते-दौड़ते गाय अचानक एक गड्ढे में गिर पड़ी।

वह महिला अपना सिर कूटकर बोलने लगी : ''हाय रे हाय ! मेरी एक पाव भर दूध देनेवाली गाय भी...''

इतने में कल्याण आ पहुँचा। कल्याण मन में विचारता है कि 'क्या गुरुदेव की कृपा है ! गाय भी इधर है और गाय की स्वामिनी भी इधर है !' कल्याण थोड़ा गाय की ओर देखता है, थोड़ा उस महिला की ओर देखता है। वह महिला तो रो रही थी और गुस्से में भी थी।

कल्याण ने कहा : ''माताजी ! लोटा भरकर दूध दोगी ?''

रोती हुई उस महिला को हँसी आ गयी और बोली : ''यह बकेन (जिसे ब्याये ५-६ महीने हो गये हों) गाय है। कुल मिलाकर पाव भर ही दूध देती है और तुम इतना बड़ा लोटा भरकर दूध माँग रहे हो ! दूसरा, यह लँगड़ी गाय है, दुहने भी नहीं देती। ले, यह तेरी माँ बैठी है, लोटा भरकर दूध निकाल ले !''

कल्याण तो था गुरुभक्त ! उसने गुरु का स्मरण किया और गाय के सिर पर प्रेम से हाथ फिराया। फिर बोला : ''हे कल्याणी ! हे गौमाता !! मेरे पूज्य गुरुदेव को दूध में बड़े भिगोकर देने हैं। उठो, जरा एक लोटा भरकर दूध दे दो।''

मानो गाय कल्याण की बात सुनने का ही इंतजार कर रही हो। जैसे कोई समझदार व्यक्ति गुरु की आज्ञा मानकर उठ खड़ा हो, ऐसे ही वह गाय उठी और कल्याण ने दूध दुहकर लोटा भर लिया। वह महिला टुकुर-टुकुर देखती ही रही

कि यह इतना दूध कभी नहीं देती, लोटा कैसे भरा ! कल्याण ने झाग उतारकर फिर लोटा भरा। पूरा लोटा भरकर उस महिला से बोला : ''माताजी ! जय सियाराम।''

महिला ने पूछा : ''यह कौन-सा मंत्र है कि गाय ने इतना सारा दूध दे दिया ? मुझे भी बता दो।''

भगवान शंकर पार्वतीजी से कहते हैं :

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥

'हे देवी ! कल्पपर्यंत के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ - ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं।'

धन्य हैं ऐसे गुरुभक्त जो सद्गुरु की प्रसन्नता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहते हैं और धन्य है उनकी निष्ठा ! ऐसों की मदद में प्रकृति भी अनुकूल हो जाती है। ❐

(पृष्ठ ५ से 'बात दो टूक, पर है सच्ची !' का शेष)

संत ज्ञानेश्वरजी ने 'ज्ञानेश्वरी गीता' में आचार्योपासना की व्याख्या में कहा है : ''आचार्य के 'उप' माने पास आसन लगाना। जहाँ तुम्हारे गुरु बैठते हैं वहाँ तुम बैठो। तुम्हारे गुरु ईश्वर से एकता का अनुभव करते हैं तो तुम भी वैसा ही अनुभव करो। जितनी गहराई में तुम्हारे गुरु बैठते हैं, उतनी ही गहराई में तुम भी अपना आसन लगाओ।''

बाहर जाकर ईश्वर के पास नहीं बैठा जाता है, बाहर से लौटकर भीतर, हृदय के भी हृदय में, अंतर्देश के भी अंतर्देश में, अपने-आपमें जब हम बैठते हैं, तब ईश्वर के पास बैठते हैं और ईश्वर के जितने पास हम बैठते हैं उतने ही हम गुरु के पास बैठते हैं। असल में गुरु और ईश्वर दो अलग-अलग अपने स्वार्थ के कारण ही मालूम पड़ते हैं। बात जरा दो टूक है, पर है सच्ची ! ❐

प्रसंग माधुरी

जो गुरु-आज्ञा के जितने करीब होते हैं, उतने वे खुशनसीब होते हैं

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

पूज्य मोटा सन् १९३० में 'स्वतंत्रता संग्राम' में आंदोलनकारियों के साथ लगे थे तो एक बार साबरमती जेल में गये। साबरमती जेल में जब कैदी ज्यादा हो जाते थे तो उनको खेड़ा जेल में ले जाते थे और कभी खेड़ा जेल से बड़ौदा जेल में ले जाते थे। जब कैदियों का स्थानांतरण होता तो जेल के एक छोटे-से दरवाजे से सिर झुकाकर गुजरना पड़ता था। जब कैदी एक-एक होकर निकलते थे तो सिपाही उनकी पीठ पर इतने जोर से डंडा मारता कि कैदी बेचारे चिल्ला उठते। दूसरे कैदी देखकर ही डर जाते थे। अंग्रेज लोग इतना डरा देते ताकि उनका हौसला दब जाय, वे दब्बू होकर रहें और आंदोलन बंद हो जाय। उन कैदियों में पूज्य मोटा का पचासवाँ नम्बर था। उनचास कैदियों के पीछे खड़े-खड़े पूज्य मोटा डंडे की आवाज और कैदियों की करुण पुकार सुन रहे थे। जब उनका आठवाँ नम्बर आया तो मोटाजी सोचने लगे कि अब क्या करूँ ? तो वे जिन्हें अपना गुरु मानते थे, उनकी आवाज आयी : 'त्राटक कर !' साथ में कैदी साथी शिवाभाई भी थे। पूज्य मोटा ने उनसे पूछा : ''तुम्हें कोई आवाज सुनाई दी ?''

उन्होंने कहा : ''मुझे तो कुछ सुनाई नहीं

पड़ा ।'' मोटा को लगा कि 'मेरे मन की कल्पना होगी ।' जब सातवाँ नम्बर आया तो फिर से आवाज आयी कि 'त्राटक कर !' तब उन्हें पता चला कि यह मेरे गुरुदेव धूनीवाले दादा केशवानंदजी ने प्रेरणा की है । जब उनके ऊपर डंडा लगने का मौका आया तो मोटा ने गुरुदेव का सुमिरन करके डंडा मारनेवाले की आँखों में झाँका, निर्भय होकर ॐकार का जप किया । उन्हें मारने के लिए सिपाही ने डंडा ऊपर तो उठाया लेकिन मारने की हिम्मत नहीं हुई । सिपाही देखता ही रह गया ! बड़े अधिकारी ने उसे डाँटा कि ''क्या करता है ! मार !'' सिपाही ने कहा कि ''मैं नहीं मार सकता हूँ ।'' तो बड़े अधिकारी ने डंडा उठाया । मोटाजी ने उसकी भी आँखों में निर्भीक होकर झाँका । ॐकार का चिंतन करते हुए, गुरु के साथ मन जोड़कर देखा तो वह भी डंडा मारने में सफल नहीं हुआ । अधिकारी जेलर के पास गया और बोला : ''एक ऐसा कैदी आया है कि पता नहीं उसके पास क्या शक्ति है कि हम उसको डंडा नहीं मार सकते हैं ।''

उस समय अंग्रेज शासन था इसलिए वे लोगों को बहुत सताते थे । सरकारी पिट्ठू भारत को आजाद करानेवालों को तो अपना दुश्मन मानते थे । जेलर बोला : ''ले आओ इधर !''

''तू कौन है, क्या करता है, कैदी है कि क्या है ? तेरे पास क्या जादू है ?''

जेलर ने सिर से पैर तक घूर-घूरकर देखा । मोटा ने जेलर की आँखों में देखा और कहा : ''भाई ! हम तो कुछ नहीं करते, हम तो भगवान का नाम लेते हैं । सबमें ईश्वर है, वह ईश्वर हमारा बुरा नहीं चाहेंगे । आपके अंदर भी हमारा ईश्वर है- ऐसा चिंतन करके खड़े थे तो उसी ईश्वर की सत्ता से उन्होंने हमको डंडा नहीं मारा और आप भी स्नेह करने लगेंगे ।''

जेलर कुछ प्रभावित हुआ और बोला : ''तुम तो इतने अच्छे आदमी हो, फिर इन आंदोलनकारियों के साथ कैसे जुड़े ?''

पूज्य मोटा : ''हमने सोचा कि देखें जरा क्या होता है, मान-अपमान का चित्त पर क्या असर होता है ? सबमें ब्रह्म है, आत्मा है, परमेश्वर है, एक सत्ता है तो उसका जरा प्रयोग करने के लिए हम इस आंदोलन में दो साल से जुड़ गये । जेल की 'सी' क्लास की रोटियाँ खाते हैं । 'सी' क्लास में लोगों को कैसे-कैसे प्रताड़ित किया जाता है, वह भी हम देखते हैं ।''

जेलर तो पानी-पानी हो गया । उसने रजिस्टर मँगाया और लिख दिया कि 'मोटाजी को 'ए' क्लास की ट्रीटमेन्ट दी जाय । इनके भोजन में घी होगा, गुड़ होगा । इनको रात को दूध मिलना चाहिए । इनके बिस्तर पर मच्छरदानी होनी चाहिए ।' एक नम्बर के कैदी को जो सुख-सुविधाएँ मिलती हैं, वे सारी लिख दीं और उनके लिए सिफारिश लिख दी । तब से पूज्य मोटा को 'ए' क्लास का खाना-पीना मिलने लगा लेकिन वे उसे अपने साथियों में बाँट देते थे और स्वयं 'सी' क्लास का भोजन करते कि 'अनेकों शरीरों में वही-का-वही है । 'सी' क्लास, 'बी' क्लास, 'ए' क्लास सब ऊपर-ऊपर की हैं । पानी की तरंग, बुलबुले, झाग, भँवर ऊपर-ऊपर हैं; समुद्र में गहराई में तो पानी एक-का-एक है ।

सब घट मेरा साँइयाँ खाली घट ना कोय ।
बलिहारी वा घट की जा घट परगट होय ॥
कबीरा कुँआ एक है पनिहारी अनेक ।
न्यारे-न्यारे बरतनों में पानी एक का एक ॥

ॐ आनंद... ॐ माधुर्य.....'

शिष्य को जिस दिन से ब्रह्मज्ञानी गुरु से दीक्षा मिल जाती है, उस दिन से गुरु हर क्षण उसके साथ होते हैं, हर परिस्थिति में उसकी रक्षा करते हैं । संसार की झंझटों से तो क्या जन्म-मरण से भी मुक्ति दिला देते हैं !

सभी शिष्य रक्षा पाते हैं,
व्याप्त गुरु बचाते हैं । □

गुरु महिमा

सच्चे हितैषी हैं सद्गुरु

इस सम्पूर्ण संसार में जितने भी प्राणी पुण्यकर्म करते हैं, वे सभी संतों का ज्ञानोपदेश सुन के ही करते हैं। अतः संसार में जो कुछ भी अच्छापन है वह सब संतों का ही उपकार है।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर से परे अपने निजस्वरूप घर को प्राप्त करने का विचार गुरु बिना नहीं मिलता। गुरु बिना परमेश्वर के ध्यान की युक्ति नहीं मिलती और हृदय में ब्रह्मज्ञान भी उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे पथिक पंथ बिना किसी भी देश को नहीं जा सकता, वैसे ही साधक ब्रह्मज्ञान बिना संसार-दशा रूप देश से ब्रह्म-स्थिति रूप प्रदेश में नहीं जा सकता। सम्पूर्ण लोकों में घूमकर देखा है तथा तीनों भुवनों को विचार द्वारा भी देखा है, उनमें साधक के ब्रह्म-आत्म विषयक संशय को नष्ट कर सके ऐसा सद्गुरु बिना कोई भी नहीं।

साधन-वृक्ष का बीज सद्गुरु-वचन ही है। उसे साधक निज अंतःकरणरूप पृथ्वी में बोये व विचार-जल से सींचे तथा कुविचार-पशुओं से बचाने रूप यत्न द्वारा सुरक्षित रखे तो उससे मनोवांछित (परम पद की प्राप्तिरूप) फल प्राप्त होगा।

जो गुरुवचनों को प्रेमपूर्वक हृदय में धारण करता है, वह अपने जीवनकाल में सदा सम्यक् प्रकार का सुख ही पाता है। सद्गुरु का शब्द प्रदान करना अनंत दान है। वह अनंत युगों के कर्मों को नष्ट कर डालता है। सद्गुरु के शब्दजन्य ज्ञान से होनेवाले पुण्य से अधिक अन्य कोई भी धर्म नहीं दिखता। इस संसार में गुरु के शब्दों द्वारा ही जीवों का उद्धार होता है, सम्पूर्ण विकार हटकर परमेश्वर का साक्षात्कार होता है।

जैसे सूर्य ओलों को गलाकर जल में मिला देता है, ओले होकर भी जल अपने जलरूप को नहीं त्याग सकता, वैसे ही सद्गुरु जीवात्मा के अज्ञान को नष्ट करके ब्रह्म से मिला देते हैं, जीवात्मा में अज्ञान आने पर भी वह अपने चेतन स्वरूप का त्याग नहीं कर सकता।

गुरुदेव की दया से सुंदर ज्ञानदृष्टि प्राप्त होती है, जिसके बल से साधक प्रकटरूप से भासनेवाले मायिक संसार को मिथ्यारूप से पहचानता है और जिसे कोई भी अज्ञानी नहीं देख सकता उस गुप्त परब्रह्म को सत्य तथा अपना निजस्वरूप समझकर पहचानता है।

गुरु-गोविंद की सेवा करने से शिष्य सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से पूर्ण हो जाता है, उसकी सब प्रकार की कमी उसके हृदय से उठ जाती है। जन्मादिक दुःख नष्ट हो जाते हैं और आशारूपी दरिद्रता भी सम्यक् प्रकार से दूर हो जाती है।

सद्गुरु आकाश के समान हैं और गुरु-आज्ञा में रहनेवाले शिष्य बादल के समान हैं। नभ-स्थित बादल में जैसे अपार जल होता है, वैसे ही गुरु-आज्ञा में रहनेवाले शिष्यों में अपार ज्ञान होता है, उन्हें कुछ भी कमी नहीं रहती है।

जिस प्रकार वनपंक्ति के पुष्पों में शहद छिपा रहता है, वैसे ही शरीराध्यास में मन रहता है। जैसे शहद को मधु-मक्षिका निकाल लाती है, वैसे ही गुरु मन को निकाल लाते हैं। वह जो मन की छिपी हुई स्थिति है उससे भी मन को गुरु निकाल लाते हैं, अतः मैं गुरुदेव की बलिहारी जाता हूँ।

ईश्वर ने जीव को उत्पन्न किया किंतु शरीर के राग में बाँध दिया, इससे वह दुःखी ही रहा। फिर गुरुदेव ने ज्ञानोपदेश द्वारा राग के मूल कारण अज्ञान को नष्ट करके राग-बंधन से मुक्त किया है और परब्रह्म से मिलाया है। अतः इस संसार में गुरु के समान जीव का सच्चा हितैषी कोई भी नहीं है।

– संत रज्जबजी ❑

सत्संग सरिता

गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

उज्जयिनी (वर्तमान में उज्जैन) के राजा भर्तृहरि के पास ३६० पाकशास्त्री थे भोजन बनाने के लिए। वर्ष में केवल एक दिन एक की बारी आती थी। ३५९ दिन वे ताकते रहते थे कि कब हमारी बारी आये और हम राजासाहब के लिए भोजन बनायें, इनाम पायें लेकिन भर्तृहरि जब गुरु गोरखनाथजी के चरणों में गये तो भिक्षा माँगकर खाते थे।

एक बार गुरु गोरखनाथजी ने अपने शिष्यों से कहा : ''देखो, राजा होकर भी इसने काम, क्रोध, लोभ तथा अहंकार को जीत लिया है और दृढ़निश्चयी है।'' शिष्यों ने कहा : ''गुरुजी ! ये तो राजाधिराज हैं, इनके यहाँ ३६० तो बावर्ची रहते थे। ऐसे भोग-विलास के वातावरण में से आये हुए राजा और कैसे काम, क्रोध, लोभरहित हो गये !''

गुरु गोरखनाथजी ने राजा भर्तृहरि से कहा : ''भर्तृहरि ! जाओ, भंडारे के लिए जंगल से लकड़ियाँ ले आओ।'' राजा भर्तृहरि नंगे पैर गये, जंगल से लकड़ियाँ एकत्रित करके सिर पर बोझा उठाकर ला रहे थे।

गोरखनाथजी ने दूसरे शिष्यों से कहा : ''जाओ, उसको ऐसा धक्का मारो कि बोझा गिर जाय।'' चेले गये और ऐसा धक्का मारा कि बोझा गिर गया और भर्तृहरि भी गिर गये। भर्तृहरि ने बोझा उठाया लेकिन न चेहरे पर शिकन, न आँखों में आग के गोले, न होंठ फड़के।

गुरुजी ने चेलों से कहा : ''देखा ! भर्तृहरि ने क्रोध को जीत लिया है।''

शिष्य बोले : ''गुरुजी ! अभी तो और भी परीक्षा लेनी चाहिए।''

थोड़ा-सा आगे जाते ही गुरुजी ने योगशक्ति से एक महल रच दिया। गोरखनाथजी भर्तृहरि को महल दिखा रहे थे। ललनाएँ नाना प्रकार के व्यंजन आदि लेकर आदर-सत्कार करने लगीं। भर्तृहरि ललनाओं को देखकर कामी भी नहीं हुए और उनके नखरों पर क्रोधित भी नहीं हुए, चलते ही गये।

गोरखनाथजी ने शिष्यों को कहा : ''अब तो तुम लोगों को विश्वास हो ही गया कि भर्तृहरि ने काम, क्रोध, लोभ आदि को जीत लिया है।''

शिष्यों ने कहा : ''गुरुदेव एक परीक्षा और लीजिये।''

गोरखनाथजी ने कहा : ''अच्छा भर्तृहरि ! हमारा शिष्य बनने के लिए परीक्षा से गुजरना पड़ता है। जाओ, तुमको एक महीना मरुभूमि में नंगे पैर पैदल यात्रा करनी होगी।''

भर्तृहरि : ''जो आज्ञा गुरुदेव !''

भर्तृहरि चल पड़े। पहाड़ी इलाका लाँघते-लाँघते मरुभूमि में पहुँचे। धधकती बालू, कड़ाके की धूप... मरुभूमि में पैर रखो तो बस सेंक जाय। एक दिन, दो दिन... यात्रा करते-करते छः दिन बीत गये। सातवें दिन गुरु गोरखनाथजी अदृश्य शक्ति से चेलों को भी साथ लेकर वहाँ पहुँचे।

गोरखनाथजी बोले : ''देखो, यह भर्तृहरि जा रहा है। मैं अभी योगबल से वृक्ष खड़ा कर देता हूँ। वृक्ष की छाया में भी नहीं बैठेगा।''

अचानक वृक्ष खड़ा कर दिया। चलते-चलते

भर्तृहरि का पैर वृक्ष की छाया पर आ गया तो ऐसे उछल पड़े मानो अंगारों पर पैर पड़ गया हो !

'मरुभूमि में यह वृक्ष कैसे आ गया ! छायावाले वृक्ष के नीचे पैर कैसे आ गया ? गुरुजी की आज्ञा थी मरुभूमि में यात्रा करने की ।'- कूदकर दूर हट गये ।

गुरुजी प्रसन्न हो गये कि 'देखो ! कैसे गुरु की आज्ञा मानता है । जिसने कभी पैर गलीचे से नीचे नहीं रखा, वह मरुभूमि में चलते-चलते पेड़ की छाया का भी स्पर्श होने से अंगारे जैसा एहसास करता है ।' गोरखनाथजी दिल में चेले की दृढ़ता पर बड़े खुश हुए लेकिन और शिष्यों की मान्यता ईर्ष्यावाली थी ।

शिष्य बोले : ''गुरुजी ! यह तो ठीक है लेकिन अभी तो परीक्षा पूरी नहीं हुई ।''

गोरखनाथजी (रूप बदलकर) आगे मिले, बोले : ''जरा छाया का उपयोग कर लो ।''

भर्तृहरि : ''नहीं, गुरुजी की आज्ञा है नंगे पैर मरुभूमि में चलने की ।''

गोरखनाथजी ने सोचा, 'अच्छा ! कितना चलते हो देखते हैं ।' थोड़ा आगे गये तो गोरखनाथजी ने योगबल से कंटक-कंटक पैदा कर दिये । ऐसी कँटीली झाड़ी कि कंथा (फटे-पुराने कपड़ों को जोड़कर बनाया हुआ वस्त्र) फट गया । पैरों में शूल चुभने लगे, फिर भी भर्तृहरि ने 'आह' तक नहीं की ।

तैसा अंम्रितु[1] तैसी बिखु[2] खाटी ।
तैसा मानु तैसा अभिमानु ।
हरख सोग[3] जा कै नही बैरी मीत समान ।
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जान॥

भर्तृहरि तो और अंतर्मुख हो गये, 'यह सब सपना है और गुरुतत्त्व अपना है । गुरु ने जो आज्ञा की है वही तपस्या है । यह भी गुरुजी की कृपा है ।'

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम् ।

अंतिम परीक्षा के लिए गुरु गोरखनाथजी ने अपने योगबल से प्रबल ताप पैदा किया । प्यास के मारे भर्तृहरि के प्राण कंठ तक आ गये । तभी गोरखनाथजी ने उनके अत्यंत समीप एक हरा-भरा वृक्ष खड़ा कर दिया, जिसके नीचे पानी से भरी सुराही और सोने की प्याली रखी थी । एक बार तो भर्तृहरि ने उसकी ओर देखा पर तुरंत ख्याल आया कि कहीं गुरुआज्ञा का भंग तो नहीं हो रहा है ?

उनका इतना सोचना ही हुआ कि सामने से गोरखनाथजी आते दिखाई दिये । भर्तृहरि ने दंडवत् प्रणाम किया । गुरुजी बोले : ''शाबाश भर्तृहरि ! वर माँग लो । अष्टसिद्धि दे दूँ, नवनिधि दे दूँ । तुमने सुंदर-सुंदर व्यंजन ठुकरा दिये, ललनाएँ चरणचम्पी करने को, चँवर डुलाने को तैयार थीं, उनके चक्कर में भी नहीं आये । तुम्हें जो माँगना हो माँग लो ।''

भर्तृहरि : ''गुरुजी ! बस आप प्रसन्न हैं, मुझे सब कुछ मिल गया । शिष्य के लिए गुरु की प्रसन्नता सब कुछ है ।''

भगवान शिव पार्वतीजी से कहते हैं :

आकल्पजन्मकोटीनां यज्ञव्रततपः क्रियाः ।
ताः सर्वाः सफला देवि गुरुसंतोषमात्रतः ॥

'हे देवी ! कल्पपर्यंत के, करोड़ों जन्मों के यज्ञ, व्रत, तप और शास्त्रोक्त क्रियाएँ - ये सब गुरुदेव के संतोषमात्र से सफल हो जाते हैं ।'

''गुरुजी ! आप मुझसे संतुष्ट हुए, मेरे करोड़ों पुण्यकर्म और यज्ञ, तप सब सफल हो गये ।''

''नहीं भर्तृहरि ! अनादर मत करो । तुम्हें कुछ-न-कुछ तो लेना ही पड़ेगा, कुछ-न-कुछ माँगना ही पड़ेगा ।''

इतने में रेती में एक चमचमाती हुई सुई दिखाई

१. अमृत २. विष ३. हर्ष-शोक

दी । उसे उठाकर भर्तृहरि बोले : ''गुरुजी ! कंथा फट गया है, सुई में यह धागा पिरो दीजिये ताकि मैं अपना कंथा सी लूँ ।''

गोरखनाथजी और खुश हुए कि 'हद हो गयी ! कितना निरपेक्ष है, अष्टसिद्धि-नवनिधियाँ कुछ नहीं चाहिए । मैंने कहा कुछ तो माँगो तो बोलता है कि सुई में जरा धागा डाल दो । गुरु का वचन रख लिया ।'

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

'जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, दक्ष, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है - वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है ।' **(गीता : १२.१६)**

'कोई अपेक्षा नहीं ! भर्तृहरि, तुम धन्य हो गये ! कहाँ तो उज्जयिनी का सम्राट और कहाँ नंगे पैर मरुभूमि में ! एक महीना भी नहीं होने दिया, सात-आठ दिन में ही परीक्षा से उत्तीर्ण हो गये ।'

अभी भर्तृहरि की गुफा और गोपीचंद की गुफा प्रसिद्ध है ।

कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य-जीवन में बहुत सारी ऊँचाइयों को छू सकते हैं ।

एक बार नैनीताल में मेरे गुरुदेव ने मुझसे कहा : ''जाओ, इन लोगों को 'चाइना पीक' (वर्तमान नाम - नैना पीक, यह हिमालय पर्वत का एक प्रसिद्ध शिखर है) दिखा के आओ ।''

चलनेवाले आनाकानी कर रहे थे, बार-बार इनकार कर रहे थे । हम हाथा-जोड़ी करके उनको 'चाइना पीक' ले गये । वहाँ मौसम साफ हो गया । सूर्य उदय नहीं हुआ था हम लोग तब चले थे पैदल और शाम को सूर्य ढल गया तब आश्रम में पहुँचे ।

गुरुजी ने पूछा : ''ऐसा खराब मौसम था, ओले पड़ रहे थे, कैसे पहुँचे ?''

हमारे साथ जो लोग गये थे, वे बोले : ''आसाराम ने कहा कि 'बापूजी ने आज्ञा दी है तो मैं आज्ञा का पालन करूँगा, आप चलो ।' हम नहीं जाना चाहते थे तो हमको हाथा-जोड़ी करे, कभी हमको समझाये, कभी सत्संग सुनाये । कैसे भी करके दो बजे हमको 'चाइना पीक' पहुँचा दिया, जहाँ कोई सैलानी नहीं थे, सब वापस भाग गये थे ।''

गुरुजी खुश हुए, बोले : ''पीऊऽऽऽ ! जो गुरु की आज्ञा मानता है, प्रकृति उसकी आज्ञा मानेगी ।'' हमको तो वरदान मिल गया !

सर्प विषैले प्यार से वश में बाबा तेरे आगे ।
बादल भी बरसात से पहले
तेरी ही आज्ञा माँगें ॥

हमने गुरु की आज्ञा मानी तो हमारी तो हजारों लोग आज्ञा मानते हैं । गुरु की आज्ञा मानने से मुझे तो बहुत फायदा हुआ । गुरु की आज्ञा मानने में जो दृढ़ रहता है, बस उसने तो काम कर लिया अपना । ❐

गुरुवाक्य का कर अनुसरण,
विश्वास श्रद्धायुक्त हो ।
बतलाय है जो शास्त्र,
कर आचार संशयमुक्त हो ॥
जो जो बताते शास्त्र गुरु,
उपदेश सर्व यथार्थ है ।
संशय न उसमें कर कभी,
यदि चाहता परमार्थ है ॥
यह ज्ञान ही केवल तुझे,
सुख मुक्ति का दातार है ।
ना ज्ञान बिन सौ कल्प में भी,
छूटता संसार है ॥
सब वृत्तियों को रोककर,
तू चित्त को एकाग्र कर ।
कर शांत सारी वृत्तियाँ,
निज आत्म का नित ध्यान कर ॥
(आश्रम से प्रकाशित पुस्तिका 'आत्मगुंजन' से)

प्रेरक प्रसंग

किया योग्यता का दुरुपयोग हुआ मौत से संयोग

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

आपके पास मानने की, जानने की, करने की शक्ति है, अतः आप ऐसे सत्कर्म करो जिन कर्मों से अंतर्यामी परमात्मा संतुष्ट हो, अहंकार पुष्ट न हो, लोभ-मोह न बढ़े, द्वेष, चिंता न बढ़े, ये सब घटते जायें। आपके पास जो भी धन, सत्ता, योग्यता है, अगर उसके साथ ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य नहीं है तो वह न जाने किस प्रकार तुम्हें धोखा दे जाय कोई पता नहीं।

हरिदास महाराज के दो शिष्य थे बैजू बावरा और तानसेन। दोनों गुरुभाई महान संगीतज्ञ हो गये। बैजू बावरा का जन्म ईसवी सन् १५४२ में चंदेरी (ग्वालियर क्षेत्र, म.प्र.) में हुआ था। बैजू का संगीत और व्यवहार बहुत सुखद था। वह गुरु की कृपा को पचाने में सफल रहा। गुरु से संगीत की विद्या सीखकर बैजू एकांत में चला गया और झोंपड़ी बनाकर संयमी जीवन जीते हुए संगीत का अभ्यास करने लगा। अभ्यास में ऐसा तदाकार हुआ कि संगीत की कला सीखनेवाले कई लोग उसके शिष्य बन गये। उनमें गोपाल नायक नाम का एक शिष्य बड़ा प्रतिभा-सम्पन्न था। जैसे बैजू ने अपने गुरु हरिदासजी की प्रसन्नता पा ली थी, ऐसे ही गोपाल ने भी बैजू की प्रसन्नता पा ली। सप्ताह बीते, महीने बीते, वर्षों की यात्रा पूरी करके गोपाल ने संगीत-विद्या में निपुणता हासिल कर ली।

अब वक्त हुआ गुरु से विदाई लेने का। गोपाल ने प्रणाम किया। विदाई देते समय बैजू का हृदय भर आया कि यह शिष्य मेरी छाया की तरह था, मेरी विद्या को पचाने में सफल हुआ है पर जाने से रोक तो सकते नहीं। बैजू भरे कंठ, भरी आँखें शिष्य को विदाई देता हुआ बोला : ''पुत्र ! तुझे संगीत की जो विद्या दी है, यह मनुष्य-जाति का शोक, मोह, दुःख, चिंता हरने के लिए है। इसका उपयोग जेब भरने या अहंकार पोसने के लिए नहीं करना।'' विदाई लेकर गोपाल चला गया।

गोपाल नायक अपने गीत और संगीत के प्रभाव से चारों तरफ जय-जयकार कमाता हुआ कश्मीर के राजा का खास राजगायक बन गया, जैसे अकबर का तानसेन खास राजगायक था।

जब ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य नहीं होता तब धन मिलता है तो धन की लालसा बढ़ती है, मान मिलता है तो मान की लालसा, सत्ता मिलती है तो सत्ता की लालसा बढ़ती है। उस लालसा-लालसा में आदमी रास्ता चूक जाता है और न करने जैसे कर्म करके बुरी दशा को प्राप्त होता जाता है। इतिहास में ऐसी कई घटनाएँ मिलेंगी।

अब गोपाल को चारों तरफ यश मिलने लगा तो उसका अहंकार ऐसा फूला, ऐसा फूला कि वह गायकों के सम्मेलन कराता तथा उनके साथ गीत और संगीत का शास्त्रार्थ करता। गायकों को ललकारता : ''आओ मेरे सामने ! अगर कोई मुझे हरा देगा तो मैं अपना गला कटवा दूँगा और जो मेरे आगे हारेगा उसको अपना गला कटवाना पड़ेगा।'' जो हार जाता उसका सिर कटवा देता। हारनेवाले गायकों के सिर कटते तो कई गायक-पत्नियाँ विधवा और गायक-बच्चे अनाथ, लाचार,

मोहताज हो जाते लेकिन इसके अहंकार को मजा आता कि मैंने इतने सिर कटवा दिये। मुझे चुनौती देनेवाला तो मृत्यु को ही प्राप्त होता है।

बैजू बावरा का दिखनेवाला सत्‌शिष्य कुशिष्य बन गया। मेरे गुरुदेव का भी एक कहलानेवाला सत्‌शिष्य ऐसा ही कुशिष्य हो गया था तो गुरुजी ने उसका त्याग कर दिया। वह मुझसे बड़ा था, मैं उसका आदर करता था। बाद में मेरी जरा प्रसिद्धि हुई तो मेरे पास आया लेकिन मैंने उससे किनारा कर लिया। जो मेरे गुरु का नहीं हुआ, वह मेरा कब तक ? गुरुभाई तब तक है जब तक मेरे गुरु की आज्ञा में रहता है। मेरे आश्रम से ४० साल में जो ५-२५ लोग भाग गये, वे बगावत करनेवाले और धर्मांतरणवालों के हथकंडे बन गये। अब उनकी बातों में मेरे शिष्य थोड़े ही आते हैं। वे तो गुरुभाई तब तक थे जब तक गुरु के सिद्धांत में रहते थे। गुरु का सिद्धांत छोड़ा तो हमारा गुरुभाई नहीं है, वह तो हमारा त्याज्य है। जैसे सुबह मल छोड़कर आते हैं तो देखते नहीं हैं। वमन करते हैं तो देखते नहीं हैं कि कितनी कीमती उलटी है।

उस जमाने में मोबाइल की व्यवस्था नहीं थी। बैजू बावरा को गोपाल की करतूतों का जल्दी से पता नहीं चला। कई गायकों के सिर कट गये, कई अबलाएँ विधवा हो गयीं, उनके बच्चे दर-दर की ठोकर खानेवाले मोहताज हो गये तब बात घूमती-घामती बैजू बावरा के कान पड़ी। उसे बड़ा दुःख हुआ कि इस दुष्ट ने मेरी विद्या का उपयोग अहंकार पोसने में किया ! मैंने कहा था कि यह संगीत की विद्या अहंकार पोसने के लिए नहीं है।

आखिर वह अपने शिष्य को समझाने के लिए पचासों कोस पैदल चलते-चलते वहाँ पहुँचा, जहाँ गोपाल नायक बड़े तामझाम से रहता था।

राजासाहब का खास था गोपाल, इसलिए अंगरक्षकों, सेवकों और टहलुओं से घिरा था। उसे संदेशा भेजा कि तुम्हारे गुरु तुमसे मिलने को आये हैं। गोपाल ने गुरु से मिलना अपना अपमान समझा। बैजू ने पहरेदारों से बहुत आजिजी की और किसी बहाने से अंदर पहुँचने में सफल हो गया। वृद्ध गुरु आये हैं यह देखकर भी वह बैठा रहा, उठकर खड़े होना उसके अहंकार को पसंद नहीं था। वह जोर से चिल्लाया : ''अरे, क्या है बूढ़ा !''

बैजू बोला : ''बेटा ! भूल गया क्या ? मैंने भरी आँखें, भरे हृदय से तुझे विदाई दी थी। मैं वही बैजू हूँ गोपाल ! क्यों तू अहंकार में पड़ गया है ! मैंने सुना तूने कइयों के सिर कटवा दिये। बेटा ! इसलिए विद्या नहीं दी थी। मैं तेरी भलाई चाहता हूँ पुत्र !''

गोपाल : ''पागल कहीं का, क्या बकता है ! यदि तू गायक है या गुरु है तो कल आ जाना राजदरबार में, दिखा देना अपनी गायन कला का शौर्य। अगर हार गया तो सिर कटवा दिया जायेगा। पागल ! बड़ा आया गुरु बनने को !''

नौकरों के द्वारा धक्के मार के बाहर निकलवा दिया। अहंकार कैसा अंधा बना देता है ! लेकिन गुरुओं की क्या बलिहारी है कि एकाध दाँव अपने पास रखते हैं। उस लाचार दिखनेवाले बूढ़े ने राजदरबार में घोषणा कर दी कि 'कल हम राजगायक के साथ गीत और संगीत का शास्त्रार्थ करेंगे। अगर हम हारेंगे तो राजासाहब हमारा सिर कटवा सकते हैं और अगर वह हारता है तो उसका कटवायें-न कटवायें स्वतंत्र हैं।' आखिर गुरु का दिल गुरु होता है, उदार होता है। तामझाम से अपनी विजय-पताका फहरानेवाले गोपाल नायक के सामने वह बूढ़ा बेचारा हिलता-डुलता ऐसा लगा मानो, मखमल से पुराने चिथड़े आकर टकरा रहे हैं लेकिन बाहर से देखने में पुराने चिथड़े थे, भीतर से हरिदास गुरु की कृपा उसने सँभाल रखी थी। गुरु से गद्दारी नहीं की थी। गुरु

से गद्दारी करने से गुरु की दी हुई विद्या लुप्त हो जाती है, मेरे गुरुभाई के जीवन में मैंने देखा है।

दूसरे दिन गोपाल ने ऐसा राग आलापा कि महलों के झरोखों से देखनेवाली रानियाँ, दास-दासियाँ वहीं स्तब्ध हो गयीं, राजा गद्गद हो गया, प्रजा भी खुश हो गयी। वह संगीत सुनने के लिए जंगल से हिरण भागकर आ गये। गोपाल ने गीत गाते-गाते हिरणों के गले में हार पहना दिये और उनको पता ही न चला। गीत-संगीत के प्रभाव से वे इतने तन्मय हो गये थे। गीत बंद किया तो हिरण भाग गये। गोपाल ने गुरु को ललकारा : ''ओ बुड्ढे ! क्या है तेरे पास ? अब तू दिखा कोई जलवा। अगर तुझमें दम है तो उन भागे हुए जंगली हिरणों को अपने राग से वापस बुला और उनके गले की मालाएँ उतारकर दिखा तो मैं कुछ मानूँ, नहीं तो तुझे मेरे आगे परास्त होने का दंड मिलेगा। सिर कटाने को तैयार हो जा।''

जो अपने गुरु को बुड्ढा कहता है समझ लो कि उसकी योग्यताओं का ह्रास शुरू हो गया, उसकी भावना का दिवाला निकला है। उस आदमी का पुण्य-प्रभाव क्षीण और मति-गति विकृत हो जाती है।

अब बैजू बावरा ने गुरु हरिदासजी का ध्यान किया :

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

गुरु की इजाजत मिल गयी कि 'अहंकार सजाने, किसीको नीचा दिखाने के लिए नहीं बल्कि धर्मरक्षा के लिए अपनी विद्या का उपयोग कर सकते हो।'

बैजू बावरा ने तोड़ी राग गाया। ऐसा राग आलापा कि राजा भावसमाधि में चला गया, रानियाँ और प्रजा सब स्तब्ध हो गये। आज तक गोपाल ने जो प्रभाव जमा रखा था वह सब फीका हो गया। जो भागे हुए हिरण थे वे वापस आ गये। बैजू खड़े-खड़े गीत गाते गये और उनके गले की मालाएँ उतारकर एक तरफ ढेर कर दिया। हिरण एकटक देखते रहे, उन्हें अपनी सुधबुध न रही।

बाद में भीमपलासी राग गाते-गाते बैजू ने एक पत्थर पर दृष्टि डाली तो वह पत्थर पिघलने लगा जैसे मोम पिघलता है। पिघले हुए उस पत्थर पर उसने अपना तानपूरा फेंका और गीत बंद किया तो पत्थर फिर कड़क हो गया और तानपूरा उसमें जम गया।

बैजू बावरा : ''हे गुणचोर, गुरुद्रोही गोपाल नायक ! अगर तेरे पास है कोई विद्या, बल या अपनी योग्यता तो इस पत्थर को पिघला और मेरा तानपूरा निकालकर दिखा।'' जिसने अहंकार के कारण कइयों की जानें ली थीं और गुरुद्रोह कर रखा था, अब उसके राग में दम ही कहाँ !

गोपाल ने गीत गाते-गाते कई बार पानी के घूँट भरे, सभी कोशिशें कीं मगर सब नाकाम रहीं। वह गाते-गाते थक गया, न पत्थर पिघला, न साज निकला, आखिर हार गया। राजा की आँखें क्रोध से चमचमाने लगीं। बैजू ने कहा : ''राजन् ! इसे माफ कर दें। आखिर मेरा शिष्य है, बालक है। इसे मृत्युदण्ड न दें।''

गोपाल : ''मृत्युदण्ड तो इस बुड्ढे को दो। यह मेरा गुरु बना था और यह विद्या मुझसे छुपाकर रखी। अगर यह विद्या मुझे सिखाता तो आज मैं हारता नहीं।''

बैजू बावरा : ''हाँ राजन् ! मुझे ही मृत्युदण्ड दो कि मैंने ऐसे कुपात्र को विद्या सिखायी जिसने लोकरंजन न करके, लोकेश्वर की भक्ति का प्रचार न करके अपने अहं को सजाया, कर्म को विकर्म बनाया। जिससे कई अबलाओं का सुहाग छिन गया, कई निर्दोष बच्चों के पिता छिन गये और तुम्हारे जैसे कई राजाओं का राज्य, धन-वैभव

इसका अहंकार पोसने में लग गया । मैं अपराधी हूँ, मुझे दण्ड दीजिये ।''

राजा : ''गायकराज ! तुम्हारे गीतों से पत्थर पिघल सकता है लेकिन न्याय के इस तख्त पर बैठे राजा का कठोर हृदय तुम नहीं पिघला सकते हो । इस गद्दार को मृत्युदण्ड दिया जायेगा !''

क्रोध से चमचमाती आँखों और उग्र हाथ ने इशारा किया - इस नमकहराम, अहंकारी का शिरोच्छेद कर दो । जल्लादों ने गोपाल का सिर धरती पर गिरा दिया । यह घटना बैजू बावरा सह नहीं सका । जैसे कुपुत्र के जाने से भी माता-पिता के दिल में दुःख होता है, ऐसे ही बैजू बावरा के दिल में दुःख हुआ ।

सतलज नदी के तट पर गोपाल का अग्नि-संस्कार हुआ । उसकी पत्नी ने प्रार्थना की : ''हे गुरुवर ! मेरे पति ने तो अनर्थ किया लेकिन आप तो करुणामूर्ति हैं, उन्हें क्षमा कर दें । मैं अपने पति की अस्थियों के दर्शन करना चाहती हूँ । अस्थियाँ नदी में चली गयी हैं । आप मेरी सहायता करें ।''

बैजू बावरा ने उसे ढाढ़स बँधाया और एक राग की रचना की । वह राग उसकी बेटी मीरा को सिखाया । मीरा को बोले : ''बेटी ! तू यह राग गा और भगवान को प्रार्थना कर कि पिता की अस्थियाँ जो नदी के तल में पहुँच गयी हैं, वे सब एकत्रित होकर किनारे आ जायें ।'' मीरा ने राग गाया और सारी अस्थियाँ किनारे लग गयीं । आज के विज्ञान के मुँह पर थप्पड़ मारनेवाले गायक अपने भारत में थे, अब भी कहीं होंगे ।

गोपाल ने गुरु की विद्या को अहंकार पोसने में लगाया, क्या हम-आप ऐसी गलती तो नहीं कर रहे हैं ? श्रीकृष्ण कहते हैं : सावधान !...

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

'कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है ।'

(गीता : ४.१७)

आप जो भी कर्म करते हो वह ईश्वर की प्रीति के लिए, समाज के हित के लिए करो; न अहं पोसने के लिए, न कर्तृत्व-अभिमान बढ़ाने के लिए, न फल-लिप्सा के लिए और न कर्म-आसक्ति के वशीभूत होकर कर्म करो । क्रियाशक्ति, भावशक्ति और विवेकशक्ति इनका सदुपयोग करने से आप करने की शक्ति, मानने की शक्ति, जानने की शक्ति जहाँ से आती है उस सत्स्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाओगे । ❐

जिस शिष्य में गुरु के प्रति अनन्य भाव नहीं जागता, वह शिष्य आवारा पशु के समान ही रह जाता है । उसकी हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो जाती है, न घर का न घाट का । उसके मन को पूर्ण विकसित हो पाने का अवसर नहीं मिलता । अधिक भटकने से उसका मन नास्तिक भाव में आ जाता है और वह खिन्नता अनुभव करने लगता है पर जिसे सद्गुरु मिल गये हैं और जो सत्शिष्य बन सका है, उसके लिए परमात्मा के प्रेम-प्रवाह का झरना फूट निकलता है । गुरुप्रसाद, गुरुकृपा जब हृदय में प्रविष्ट होती है तब अ...हा...हा !! गुरुप्रसाद क्या वस्तु होती है यह यदि जानना हो तो किसी गुरुभक्त के हृदय में झाँककर देखिये, गुरुप्रसाद का स्वाद क्या होता है यह यदि जानना हो तो किसी सत्शिष्य के हृदय में झाँककर देखिये, तब आपको पता चलेगा ।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'पंचामृत' से)

श्रद्धा संजीवनी

शिष्य की मनमुखता और गुरु का धैर्य

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

गुरु अपने शिष्य की सौ-सौ बातें मानते हैं, सौ-सौ नखरे और सौ-सौ बेवकूफियाँ स्वीकार करते हैं ताकि कभी-न-कभी, इस जन्म में नहीं तो दूसरे जन्म में यह जीव पूर्णता को पा ले। बाकी तो गुरु को क्या लेना है ! अगर गुरु को कुछ लेना है तभी गुरु बने हैं तो वे सचमुच में सद्गुरु भी नहीं हैं। सद्गुरु को तो देना-ही-देना है। सारा संसार मिलकर भी सद्गुरु की सहायता नहीं कर सकता है पर सद्गुरु अकेले पूरे संसार की सहायता कर सकते हैं। मगर संसार उनको सद्गुरु के रूप में समझे, माने, मार्गदर्शन ले तब न ! ऐसा तो है नहीं इसलिए लोग बेचारे पच रहे हैं।

सब एक-दूसरे को नीचा दिखाकर, एक-दूसरे का अधिकार छीनकर सुखी होने में लगे हैं। सब-के-सब दुःखी हैं, सब-के-सब पच रहे हैं, नहीं तो ईश्वर के तो खूब-खूब उपहार हैं - जल है, तेज है, वायु है, अन्न है, फल हैं, धरती है और इसी धरती पर ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु भी हैं तो आनंद से जी सकते हैं, मुक्तात्मा हो सकते हैं। लेकिन राग में, द्वेष में, स्वार्थ में, अधिक खाने में, अधिक विकार भोगने में, सुखी होने में, मनमुखता में लगे हैं। गुरुआज्ञा-पालन में रुचि नहीं इसलिए ज्ञान में गति नहीं, पर जो आज्ञा-पालन में रुचि रखते हैं उनको गुरु-ज्ञान नित्य नवीन रस, नित्य नवीन प्रकाश देता है, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। वे परम सुख में विराजते हैं, परमानंद में, परम ज्ञान में, परम तत्त्व में एकाकार रहते हैं। परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति यह बहुत ऊँची स्थिति है, मानवता के विकास की पराकाष्ठा है, जन्म के साफल्य की पराकाष्ठा है। स्वर्ग मिल गया तो कुछ नहीं मिला। स्वर्ग से बढ़कर तो धरती पर कुछ नहीं है। तत्त्वज्ञानी की नजर में स्वर्ग भी कुछ नहीं है। स्वर्ग के आगे पृथ्वी का राज्य कुछ नहीं है। क्लर्क का पद प्रधानमंत्री पद के आगे छोटा है, तुच्छ है। ऐसे ही प्रधानमंत्री पद स्वर्ग के इन्द्रपद के आगे तुच्छ है और स्वर्ग का इन्द्रपद भी परमात्मपद के आगे तुच्छ है। जो सद्गुरु की कृपा को सतत पचाने में लगेगा, उसको ऐसे परमात्मपद की प्राप्ति हो सकती है। अतः अपने हृदय में ईश्वरप्राप्ति की तड़प बढ़ायें। तड़प और प्यास बढ़ने से अंतःकरण की वासनाएँ, कल्मष और दोष तप-तपकर प्रभावशून्य हो जाते हैं। जैसे गेहूँ को भून दिया फिर वे बीज बोने के काम में नहीं आयेंगे, चने या मूँगफली को भून दिया तो फिर उसका विस्तार नहीं होगा, ऐसे ही ईश्वरप्राप्ति की तड़प से वासनाएँ भून डालो तो फिर वे वासनाएँ संसार के विस्तार में नहीं ले जायेंगी। ईश्वर की तड़प जितनी ज्यादा है उतना ही शिष्य गुरु की आज्ञा ईमानदारी से मानेगा। **गुरु की समझ और धैर्य गजब का है और शिष्य की अपनी मनमुखता भी गजब की है, फिर भी दोनों की गाड़ी चल रही है तो गुरु की करुणा और शिष्य की श्रद्धा से।** गुरु अपनी करुणा हटा लें तो शिष्य गिर जायेगा अथवा तो शिष्य अपनी श्रद्धा हटा ले तो भी गिर जायेगा। गुरु की दया और शिष्य की श्रद्धा का मेल... । नहीं तो गुरु कहाँ और शिष्य

कहाँ ! गुरु सत्स्वरूप में जीते हैं और शिष्य असत् में जीता है, दोनों का मेल होना सम्भव ही नहीं है। अमावस्या की काली रात और दोपहर का सूर्य कभी मिल सकते हैं क्या ? लेकिन यहाँ मिलन है। गुरु अपनी ऊँचाइयों से थोड़ा नीचे आ जाते हैं जहाँ शिष्य है और शिष्य अपनी नीची वासना से थोड़ा ऊपर श्रद्धा के बल से चलने को तैयार हो जाता है। जहाँ गुरु हैं वहाँ पहुँचने की भावना तो बनती है बेचारे की। चलो, आज नहीं तो कल पहुँचेगा।

भगवान का चित्र तो काल्पनिक है, किसीने बनाया है परंतु भगवान जहाँ अपनी महिमा में प्रकट हुए हैं, ऐसे महापुरुष तो साक्षात् हमारे पास हैं। वे महापुरुष पूजने व उपासना करने योग्य हैं। 'मुण्डकोपनिषद्' में आता है कि 'जिसको इस लोक का यश और सुख-सुविधा चाहिए वह भी ज्ञानवान का पूजन करे और मरने के बाद किसी ऊँचे लोक में जाना हो तब भी ज्ञानवान की पूजा करे।'

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥

'वह विशुद्धचित्त आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है और जिन-जिन भोगों को चाहता है, वह उसी-उसी लोक और उन्हीं-उन्हीं भोगों को प्राप्त कर लेता है। इसलिए ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला पुरुष आत्मज्ञानी की पूजा करे।' **(मुण्डकोपनिषद् : ३.१.१०)**

वे ज्ञानी अपने शिष्य या भक्त के लिए मन से जिस-जिस लोक की भावना करके संकल्प कर देते हैं, उनका शिष्य उसी-उसी लोक में जाता है। **तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः।** अपनी कामना पूर्ण करने के लिए आत्मज्ञानी महापुरुष का पूजन-अर्चन करें, उपासना करें। हम तो कहते हैं कि आत्मज्ञानी पुरुष का पूजन-अर्चन करो यह तो ठीक लेकिन आप ही आत्मज्ञानी हो जाओ मेरा ध्यान उधर ज्यादा है। घुमा-फिराकर मेरा प्रयत्न उधर की ओर ही रहता है।

आत्मज्ञानी महापुरुष ऐसे उत्तम पद में पहुँचे होते हैं, उनकी चेतना इतनी व्यापक, इतनी ऊँचाई में व्याप्त रहती है कि चन्द्र, सूर्य और आकाशगंगाओं से पार अनेकों ब्रह्माण्ड भी उनके अंतर्गत होते हैं। साधारण आदमी को यह बात समझ में ही नहीं आयेगी। जो मजाक में भी झूठ नहीं बोलते थे ऐसे सत्यनिष्ठ रामजी को वसिष्ठजी ने यह बात बतायी थी। रामजी के आगे उपदेश देना कोई साधारण गुरु का काम नहीं है और रामजी किसी ऐरे-गैरे को गुरु नहीं बनाते हैं, अपने से कई गुना ऊँचे होते हैं वहीं माथा झुकता है। गुरु का स्थान कोई ऐरा-गैरा नहीं ले सकता है। कितनी भी सत्ता हो, कितनी भी चतुराई का ढोल पीटे फिर भी गुरु के लिए हृदय में जो जगह है उस जगह पर, गुरु के सिंहासन पर ऐसे किसीको भी थोड़े ही बिठाया जाता है, कोई बैठ ही नहीं सकता। हमारे जीवन में कई ऊँचे-ऊँचे साधु-संत आये परंतु सब मित्रभाव से आये, सद्गुरु तो हमारे पूज्यपाद भगवत्पाद श्री श्री लीलाशाहजी महाराज ही हैं। कई नेता आये, कई भक्त आये किंतु मेरे गुरुदेव के लिए मेरे हृदय में जो जगह है, उस जगह पर आज तक कोई बैठा है क्या ! अदृश्य होनेवाले, हवा पीकर पेड़ पर रहनेवाले योगियों से भी हमारा परिचय हुआ परंतु गुरुकृपा से जो आत्मज्ञान का सुख मिला उसके आगे बाकी सब नन्हा, बचकाना है। तो गुरु की जगह तो गुरु की है, उस जगह पर और कोई बैठ ही नहीं सकता। वह बहुत ऊँचा स्थान है। गुरु-गोविंद दोनों एक साथ आ जायें तो क्या करोगे ? **(शेष पृष्ठ २२ पर)**

विवेक जागृति

हृदयमंदिर की यात्रा कब करोगे ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

कलकत्ता में दो भाई रहते थे । दोनों के पास खूब धन-सम्पदा थी । उनके बीच इकलौता बेटा था प्राणकृष्ण सिंह । ये दोनों भाइयों की सम्पत्ति के एकमात्र उत्तराधिकारी थे । उनके यहाँ भी एक ही लड़का था । उसका नाम था कृष्णचन्द्र सिंह । उनके दादाजी, पिता उन्हें प्यार से 'लाला' कहकर पुकारते और नौकर-चाकर 'लालाबाबू' कहते थे । शिक्षा प्राप्त करने के बाद लालाबाबू की वर्धमान कलेक्टरी के सेरेस्तादार पद पर नियुक्ति हो गयी । बाद में उड़ीसा के सर्वोच्च दीवान के पद पर भी उन्हें नियुक्त किया गया ।

समय बीता, लालाबाबू के पिताजी का स्वर्गवास हो गया । पिता की जमींदारी और सारी सम्पदा की देखभाल का भार इनके ऊपर आ गया । इनके दादाजी अंग्रेज शासनकाल में दीवान थे और बड़ी धन-सम्पदा के मालिक थे ।

लालाबाबू कलकत्ता में अपने कामकाज से समय निकालकर शाम को गंगाजी के किनारे घूमने निकल जाते । पाँच-पचीस मुनीम, मैनेजर और खुशामदखोर साथ चलते । नौकर-चाकर आरामदायक कुर्सी लगा देते, चाँदी का हुक्का रख देते । लालाबाबू आराम से हुक्का गुड़गुड़ाते और गंगाजी की लहरों का आनंद लेते ।

एक शाम को लालाबाबू गंगा-किनारे बैठे थे । कोई माई अपने कुटुम्बी को जगा रही थी : ''लाला ! शाम हो गयी, कब तक सोओगे ? जागो । देर है गयी, दिन बीतो जाय रियो है । लालाबाबू ! देर है गयी, जागो !''

पुण्यात्मा लालाबाबू ने सोचा कि 'सच है, देर हो रही है । जिंदगी का उत्तरकाल शुरू हो रहा है, बाल सफेद हो रहे हैं, अब जागना चाहिए । समाज की चीज धन-दौलत, वाहवाही... ये कब तक !'

घर आये और कुटुम्बियों से कहा : ''अब मैं वृंदावन जाऊँगा । जीवन की साँझ हो रही है, देर हो रही है । मेरे को जागना है ।''

सब छोड़-छाड़कर वृंदावन में आ गये । भिक्षुक लोग जैसे भिक्षा माँगते हैं, ऐसे अन्नक्षेत्रों से टुकड़ा माँगकर खाते और 'राधे-राधे, राधे-कृष्ण, राधे-राधे-राधे...' का जप-कीर्तन करते । देखा कि 'अब मैं तो टुकड़ा माँगकर खाता हूँ पर और साधु-संत भी भिक्षा माँग रहे हैं । घर पर खूब सम्पदा है, वहाँ से धन मँगाकर साधु-संतों के लिए अन्नक्षेत्र और उनके निवास के लिए कुछ आश्रम-वाश्रम बनवायें ।'

रंगजी के मंदिर में दर्शन करने गये तो मन में हुआ कि 'सेठ लक्ष्मीचंद ने यह मंदिर बनवाया है, मैं खूब धन लगाकर इससे भी बढ़िया मंदिर बनवाऊँ ।'

घर से कुछ सम्पदा मँगाकर लालाबाबू ने बाँके-बिहारीजी का मंदिर बनवाया । अब भगवान को पाने की तड़प ने लालाबाबू की जिज्ञासा जगायी कि अगर ठाकुरजी की प्राण-प्रतिष्ठा विधिपूर्वक हुई है तो मूर्ति में प्राण चलने चाहिए ।

सर्दियों के दिन थे । लालाबाबू ने पुजारी को मक्खन की एक टिक्की दी और बोले : ''ठाकुरजी के सिर पर रखो । यदि प्राण चलते हैं तो शरीर में गर्मी होती है, मस्तक की गर्मी से मक्खन पिघलेगा ।''

उनकी सद्भावना से ठाकुरजी के सिर पर रखा हुआ मक्खन पिघलने लगा। वे बड़े भावविभोर हो गये और जोर-जोर से पुकारने लगे : ''जय हो प्रभु ! जय हो !! राधे-गोविंद, राधे-राधे, राधे-गोविंद-राधे, कृष्ण-कन्हैया लाल की जय !'' दण्डवत् प्रणाम करके ठाकुरजी के चरणों में गिर पड़े। जैसे तुलसीदासजी के कहने से भगवान श्रीकृष्ण ने बंसी छोड़ दी और धनुष उठाया था, ऐसे ही बाँके-बिहारी ने प्रार्थना सुन ली। बाँके-बिहारी की मूर्ति से शरीर की गर्मी का प्रमाण मिल गया। मन में संतोष हुआ कि ठाकुरजी में प्राण-प्रतिष्ठा हुई है, मूर्ति में चैतन्य जागृत हो गया है।

कुछ दिनों बाद फिर परीक्षा का विचार आया। पुजारी को पतली-सी रूई दी और बोले : ''ठाकुरजी की नासिका पर रखो। अगर प्राण-प्रतिष्ठा हुई है तो शरीर में प्राण भी चलने चाहिए। देखें, ठाकुरजी श्वास लेते हैं कि नहीं।''

पुजारी ने रूई रखी तो देखते हैं कि ठाकुरजी की मूर्ति के निःश्वास से रूई हिल रही है ! लालाबाबू अहोभाव से भर गये। लेकिन कुछ समय के बाद देखा कि 'अब भी ठाकुरजी के स्वरूप का ज्ञान तो नहीं हुआ। मेरे सद्भाव से, संकल्प से, शुद्ध पूजा से ठाकुरजी की मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा का तो मैं एहसास करता हूँ परंतु मेरे प्राण, मन ठाकुरजी में रमण करें तब तो बात बने।'

उस समय कृष्णदासजी महाराज प्रसिद्ध थे वृंदावन में। लालाबाबू उनके पास गये और प्रार्थना की : ''महाराज ! मुझे भगवान से मिलाओ, भगवान के दर्शन कराओ, भगवान के स्वरूप का ज्ञान, भगवान की प्रीति का दान दे दो।''

कृष्णदासजी महाराज बोले : ''अभी समय नहीं हुआ है, समय होगा तो मैं तुम्हें खुद आकर दीक्षा दे दूँगा।''

लालाबाबू सोचने लगे कि 'सब कुछ छोड़कर आया हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ, सद्भाव से ठाकुरजी में प्राण-प्रतिष्ठा का एहसास भी मुझे हो गया किंतु गुरुजी मुझे बोलते हैं कि अभी समय नहीं हुआ है, मैं दीक्षा के योग्य नहीं हुआ हूँ। क्या कमी है ?'

अपनी कमी खोजने जाओ ईमानदारी से तो जल्दी मिल जायेगी। हम अपनी कमी जितनी जानते हैं उतना हमारे कुटुम्बी नहीं जानते, पड़ोसी नहीं जानते, दूसरे नहीं जानते। अपनी कमी पर चादर रखने से हमारी मति-गति और जिज्ञासा दब जाती है। अगर अपनी कमी निकालकर फेंक दें तो हमारे हृदय में परमेश्वर यूँ छलकते हुए प्रकटते हो जायें ! जैसे बोर करने से मिट्टी, कंकड़ हट जाते हैं तो पानी के झरने अंदर मिल जाते हैं और खूब नित्य नवीन जलधारा मिलती रहती है, ऐसे ही अपनी कमी निकालें तो नित्य नवीन सुख, नित्य नवीन प्रेमरस, ज्ञानरस और आरोग्य रस मिलता रहता है। लेकिन हमने वासनाओं के पर्दे से, इच्छाओं के कंकड़ और मिट्टी से उसे दबाकर रखा है, इसलिए स्वास्थ्य के लिए औषधि लेनी पड़ती है, ज्ञान के लिए पोथे रटने पड़ते हैं, प्रसन्नता के लिए क्लबों में भटकना पड़ता है। **जिसके जीवन में भगवद्रस आ गया उसको प्रसन्नता के लिए क्लबों में नहीं जाना पड़ता, वह निगाह डाल दे तो लोगों में प्रसन्नता छा जाय।**

लालाबाबू कमी खोजते गये तो पाया कि 'मेरे में कमी तो है। लक्ष्मीचंद सेठ ने रंगजी का मंदिर बनवाया और मैंने उनके प्रति प्रतिस्पर्धी भाव रखा। उनके साथ मुकदमेबाजी भी की। मुकदमे में जीत गया, मेरे में यह अहं भी है।'

जब तक अहं रहता है तब तक ठाकुरजी की प्राप्ति नहीं होती।

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले।
खुदा तुझसे पूछे कि बंदे ! तेरी रजा क्या है ?

अभी खुदी अहंवाली है, खुदी ईश्वर में

नहीं खोयी ।

रंगजी के मंदिर के बाहर अन्नक्षेत्र में गरीब-गुरबों को भोजन मिलता था । जहाँ सब याचक लोग कतार में खड़े रहते थे, वहाँ जाकर वे खड़े रह गये । नौकर ने सेठ लक्ष्मीचंद को बताया कि ''लालाबाबू जिन्होंने रंगजी के मंदिर जैसा ही भव्य मंदिर बनवाया, साधु-संतों के लिए सदावर्त खोला, वे स्वयं भिक्षा माँगने के लिए अपने यहाँ खड़े हैं ।''

सेठ लक्ष्मीचंद कच्चा सीधा, पक्की रसोई और सौ अशर्फियाँ लेकर हाजिर हो गये कि ''महाराज ! स्वीकार करें ।''

लालाबाबू बोले : ''यह आप मुझ भिक्षुक के लिए लाये हैं ! भिक्षुक को यह शोभा नहीं देता । आप इतना सारा सामान उठाकर आये हैं, यह आप मेरी सम्पदा का स्वागत कर रहे हैं । इसका मैं अधिकारी नहीं हूँ । मैंने तो आपसे मुकदमेबाजी की थी, अब आप मुझे क्षमा कीजिये । एक भिक्षुक, तुच्छ भिक्षुक, आपके द्वार का भिखारी मानकर मुट्ठी भर अन्न दे दीजिये । मैं उसीसे निर्वाह कर लूँगा ।''

ये नम्रता के, अहंशून्यता के वचन सुनकर लक्ष्मीचंद सेठ के हृदय में छुपे हुए हृदयेश्वर का, परमात्म-सत्ता का भक्तिभाव छलका । आँखों में आँसू, हृदय में प्यार...

लक्ष्मीचंद बोले : ''यह क्या कह रहे हो लालाबाबू !''

लालाबाबू ने कहा : ''लक्ष्मीचंद ! क्षमा करो, मैं आपका गुनहगार हूँ ।''

दो और दो चार आँखें लेकिन प्रेमस्वरूप परमात्मा दोनों के द्वारा रसमय होकर छलक रहा है, द्रवीभूत हो रहा है । दोनों गले लगे और दोनों एक-दूसरे के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करने लगे । इतने में कृष्णदास महाराज आये और बोले : ''लालाबाबू ! आ जाओ-आ जाओ, दीक्षा का समय हो गया है ।''

कृष्णदासजी ने लालाबाबू को दीक्षा दी और कहा : ''भगवान को प्राप्त करना है तो किसीसे मिलो मत, जब तक ईश्वरप्राप्ति न हो तब तक इसी गुफा में रहो । भिक्षा तुम्हें हम यहीं भिजवा देंगे ।''

अमीरी की तो ऐसी की, सब जर लुटा बैठे ।
फकीरी की तो ऐसी की,
कृष्णदास की गुफा में आ बैठे ॥

सातत्य... भक्ति में सातत्य ! हम लोग थोड़ी भक्ति करते हैं, थोड़ा साधन करते हैं और बहुत-सा असाधन करते हैं इसलिए ईश्वरप्राप्ति का रास्ता लम्बा हो जाता है, नहीं तो ईश्वर तो हमारा आत्मा है । जिसको हम कभी छोड़ नहीं सकते वह परमात्मा है और जिसको सदा न रख सकें उसीका नाम संसार है ।

तो लालाबाबू ने अपना कल्याण कर लिया । ब्रह्मज्ञानी गुरु के चरणों में पहुँच गये और हृदय-मंदिर की यात्रा की । पुत्रों और पत्नी के मोहपाश में न पड़े, प्रभुप्रेम में पावन हुए । लालाबाबू ने तो अपना काम बना लिया । अब हम इस माया से निपटकर किस दिन कल्याण के मार्ग पर चलेंगे ? ❐

(पृष्ठ १९ से 'शिष्य की मनमुखता और गुरु का धैर्य' का शेष)

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥

उस ईश्वरस्वरूप आत्मा - ब्रह्मवेत्ता को कौन तौल सकता है ? किससे तौलोगे ? उसके समान कोई बाट हो तभी तो तौलोगे !

किसीको परेशान होना हो, अशांत होना हो तो आत्मज्ञानी गुरु के लिए फरियाद करे कि 'हमारा तो कुछ नहीं हुआ, हमको तो कोई लाभ नहीं हुआ ।' निषेधात्मक विचार करेगा तो निषेध ही हो जायेगा । जो उनके प्रति आदरभाव और विधेयात्मक विचार करेगा, उसकी बहुत प्रगति होगी । ❐

ज्ञान गंगोत्री

नंगा होना तो कोई विरला जाने !

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

गांधारी ने दुर्योधन को कहा कि ''मैंने आँखों पर पट्टी बाँध रखी है । मेरा तप इतना है कि आँख पर से पट्टी खोलूँ तो जैसा चाहूँ वैसा हो जायेगा । बेटे ! तू सुबह एकदम नग्न होकर आ जाना । मैं तुझे वज्रकाय बनाने के संकल्प से देख लूँगी तो तू वज्रकाय हो जायेगा, फिर तेरे को कोई मार नहीं सकेगा ।''

गांधारी की तपस्या सब लोग जानते थे । पांडवों में सनसनी फैल गयी । 'दुर्बुद्धि दुर्योधन वज्रकाय हो जायेगा, अमर हो जायेगा तो धरती पर अच्छे आदमी का रहना मुश्किल हो जायेगा ! क्या करें ?...' इस प्रकार पांडव बड़े दुःखी, चिंतित थे । भगवान श्रीकृष्ण आये । पांडव बोले : ''गोविंद ! क्या आपने सुना, गांधारी ने दुर्योधन को बुलाया है कि एकदम निर्वस्त्र होकर आ, मैं पट्टी खोलकर तुझे देखूँगी तो तू वज्रकाय हो जायेगा और तुझे कोई मार नहीं सकेगा ।''

श्रीकृष्ण हँसे । पांडव बोले : ''माधव ! आपको तो सब विनोद लगता है ।''

''अरे ! विनोद ही है । सारा प्रपंच ही विनोद है, सारी सृष्टि विनोदमात्र है । जैसे नाटिका में उग्र रूप, सामान्य रूप, स्नेहमय रूप, दुष्टों का क्रूर रूप... जो कुछ दिखाते हैं, वह सब दर्शक के विनोद के लिए होता है । ऐसे ही यह सारी सृष्टि ब्रह्म के विनोदमात्र के लिए है, इसमें ज्यादा चिंतित होने की जरूरत नहीं है ।''

''लेकिन वह दुर्योधन नंगा होकर जायेगा...''

''अरे ! वह बेवकूफ नंगा होना जानता ही नहीं है । नंगा होना जानता तो बेड़ा पार हो जाता । उसने तो अपने ऊपर काम के, क्रोध के, लोभ के, अहंता के विचारों के कई आवरण लगा दिये हैं ।''

दुर्योधन नंगा होना जानता ही नहीं है, नंगा होना तो महापुरुष जानते हैं । अन्नमय कोष मैं नहीं हूँ, प्राणमय कोष मैं नहीं हूँ, मनोमय कोष मैं नहीं हूँ, विज्ञानमय कोष मैं नहीं हूँ, आनंदमय कोष मैं नहीं हूँ; बचपन मैं नहीं हूँ, जवानी मैं नहीं हूँ, बुढ़ापा मैं नहीं हूँ; सुख मैं नहीं हूँ, दुःख मैं नहीं हूँ... इन सबको जाननेवाला मैं चैतन्य आत्मा हूँ - यह है नंगा होना ।

खुश फिरता नंगम-नंगा है,
नैनों में बहती गंगा है ।
जो आ जाये सो चंगा है,
मुख रंग भरा मन रंगा है ॥

देखो, रमण महर्षि कितने नंगे थे ! एक बार एक पंडित ने महर्षि के पास आकर लोगों को प्रभावित करने के लिए कई प्रश्न पूछे । महर्षि ने उठाया डंडा और पंडित को भगाने लगे । भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी भाई देसाई, विदेशी पत्रकार पॉल ब्रंटन जैसे जिनके चरणों में बैठते थे, ऐसे रमण महर्षि कितने नंगे ! कोई आवरण नहीं । लोग सोच भी नहीं सकते कि शांत आत्मा, ब्रह्म-स्वरूप, सबमें अद्वैत ब्रह्म देखने की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए रमण महर्षि को ऐसा भी क्रोध आता है !

अरे, क्रोधी तो अपने को जलाता है, वे महापुरुष तो क्रोध का भी उपयोग करते हैं । आ गया गुस्सा तो आ गया, किसीका अहित करने के लिए नहीं परंतु व्यवस्था सँभालने के लिए । देखो,

महापुरुष कितने नंगम-नंगे हैं ! कोई आवरण नहीं ।

तो दुर्योधन नंगा होना नहीं जानता और गांधारी पट्टी खोलना नहीं जानती । पट्टी खोलती है पर मोह-ममता चालू रखती है तो पट्टी क्या खोली ! अपनी वर्षों की तपस्या अपने रज से उत्पन्न एक जीव के पीछे नष्ट कर रही है ! मासिक धर्म के रक्त को पीकर जो शरीर बना है और अधर्म कर रहा है, उसके पीछे गांधारी अपनी तपस्या खत्म कर रही है । धर्म के पक्ष में निर्णय लेना चाहिए, वह तो ममता में निर्णय लेकर अपने पापी बेटे को दीर्घ जीवन देना चाहती है तो उसने पट्टी नहीं खोली, बेवकूफी की पट्टी बाँधे रखी ।

लोग समझते हैं कि नंगा होने में क्या है, कपड़े उतार दिये तो हो गया नंगा ! अरे, कपड़े उतारने सें कोई नंगा होता है क्या ! वह तो बेशर्म आदमी है । अहं की चादरें पड़ी हैं, विकारों की चादरें पड़ी हैं, मान्यताओं की चादरें पड़ी हैं... । नंगा तो कोई भाग्यशाली हो । लोग फोटो में देखते हैं कि श्रीकृष्ण ने चीर-हरण किया और गोपियों को नंगा किया । चित्रकार भी ऐसे ही चित्र बना देते हैं कि गोपियाँ बेचारी चिल्ला रही हैं और श्रीकृष्ण कपड़े ऊपर ले गये । यह बेवकूफी है । श्रीकृष्ण ने ग्वाल-गोपियों को नंगा किया, मतलब 'मैं गोपी हूँ, मैं ग्वाल हूँ, मैं अहीर हूँ, मैं फलाना हूँ...' इन मान्यताओं की परतें हटायीं ।

पाँच शरीर होते हैं और हर शरीर में अपने-अपने विकार होते हैं । वही चादरें ओढ़कर जीव जी रहा है, नंगा होना जानता ही नहीं ।

हम अमेरिका में स्वीमिंग पूल देखने गये थे । वहाँ सब पुरुषों के शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था, एकदम नंगे । ऐसे नंगा होने से तो पाप लगता है । शरीर को नंगा करना शास्त्रविरुद्ध है । स्नानागार में भी नंगा नहीं रहना चाहिए । कोई-न-कोई वस्त्र कटि पर होना चाहिए ।

श्रीकृष्ण ने कहा : ''गांधारी पट्टी खोलना नहीं जानती है और दुर्योधन नंगा होना नहीं जानता है । तुम चिंता क्यों करते हो ?''

''माधव ! लेकिन वह देख लेगी तो ?''

''अरे ! तुम देखो तो सही । वह किस रास्ते से जाता है, मैंने पता करके रखा है ।''

दुर्योधन एकदम नंगधड़ंग होकर जा रहा था तो श्रीकृष्ण ने देख लिया । अब ढकने को कुछ था नहीं तो ऐसे ही बैठ गया । श्रीकृष्ण ने कहा : ''अरे दुर्योधन ! तू इतना समझदार और ऐसे जा रहा है ! वह तेरी माँ है और तू इतनी बड़ी उम्र का है; मैं तो पुरुष हूँ, जब मेरे सामने तेरे को इतना संकोच होता है तो माँ के सामने जाने पर कैसा होगा ! कम-से-कम कटिवस्त्र तो पहन ले ।''

दुर्योधन को लगा कि बात तो ठीक कहते हैं । उसने कटिवस्त्र (कमर से घुटने तक शरीर ढकने का वस्त्र) पहन लिया ।

दुर्योधन गया गांधारी के पास और गांधारी ने संकल्प किया कि 'दुर्योधन के शरीर पर जहाँ-जहाँ मेरी नजर पड़े, वे सभी अंग वज्रसमान हो जायें ।' सारी तपस्या दाँव पर लगा दी । पट्टी खोली तो देखती है कि दुर्योधन ने कटिवस्त्र पहना है । उसको देखकर बोलने लगी : ''अरे अभागे ! यह क्या कर दिया तूने !''

श्रीकृष्ण ने भीम को कहा : ''अब दुर्योधन को कहाँ मारने से मरेगा, वह उपाय समझ ले । इधर-उधर गदा मारने की जरूरत नहीं है कमर पर ही गदा मारना, गांधारी ने उसके मरने का रास्ता बता दिया है ।''

गांधारी ईश्वरीय विधान को जानती तो थी, धर्म का उसे ज्ञान तो था लेकिन उसका धर्म मोहवश अधर्म की पीठ ठोंकता है । किसी भी व्यक्ति-वस्तु-परिस्थिति में ममता हुई, आसक्ति हुई, मोह हुआ तो समझो कि मरे ! इसलिए मोह-ममता नहीं होनी चाहिए और वह सद्गुरु की कृपा बिना नहीं मिटती । ❐

जीवन पाथेय

आरम्भ सँवारा तो सँवरता है जीवन

जीवन का आरम्भिक समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । जीवन का पतन और उत्थान बाल्यावस्था के संस्कारों पर ही निर्भर है । बाल्यावस्था व युवावस्था से ही जो व्यक्ति सद्‌गुणों का संग्राहक है, दयालु है, उदार है, कष्टसहिष्णु है, कर्तव्यपरायण तथा प्रेमी है, आगे चलकर वही समाज में एक अच्छा मानव हो सकता है । युवावस्था में ही जो नशीले पदार्थों का व्यसनी हो जाता है तथा जिसमें क्रोध, अभिमान, इन्द्रिय-लोलुपता की प्रधानता है एवं जो काम, क्रोध और रसना के स्वाद के वेग को नहीं रोक पाता, वही आगे चलकर समाज में मानवता को कलंकित करता है । सौभाग्यशाली युवक उसीको समझना चाहिए जो अपने जीवन में आरम्भ से ही सज्जन एवं साधु-महात्माओं के सुसंग से दैवी सम्पत्ति को बढ़ाता है और कुसंग से बचता है ।

अपने कर्तव्यकर्मों में सावधान रहना, प्रसन्न रहना, उन्हें विधि के साथ पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प लेना - यह सब सफलता का शुभ मुहूर्त है । इसके विपरीत अपने कर्तव्य में आरम्भ से आलस्य करना, खिन्न-उदास रहकर बिना मन के कार्य आरम्भ करना - ये सफलता के पथ में अशुभ संकेत हैं, अपशकुन हैं ।

सभीका यह अनुभव है कि जिस दिन प्रातः उठने में आलस्यवश देरी हो जाती है, उस दिन शौच, स्नान आदि नित्यकर्म समयानुसार नहीं होते, उस दिन सभी कार्यों में गड़बड़ी, अस्त-व्यस्तता रहती है और जिस दिन समय पर उठने में एवं नित्यनियम पूर्ण करने में आलस्य नहीं रहता, उस दिन सभी कार्य व्यवस्थित ढंग से पूरे होते हैं । वह दिन हँसता हुआ-सा प्रतीत होता है ।

जिसका आरम्भ सुंदर, धर्म, नीति और मर्यादा से सुसंबद्ध होकर विधिवत् चलता है, उसका भविष्य भला क्यों न सुंदर, पवित्र, सुखमय और मंगलमय होगा ? अवश्य होगा !

जिन व्यक्तियों के हृदय में आरम्भ से केवल शरीर की सुंदरता का तथा शरीर को सुंदर बनाने के लिए वस्त्राभूषणों का और वस्त्राभूषणों के लिए धन का महत्त्व प्रतीत होता है, वे जीवन को सुंदर नहीं बना पाते। ऐसे लोग वस्तुओं एवं व्यक्तियों की दासता में बँधे रहते हैं । यदि बाल्यावस्था एवं युवावस्था के आरम्भ में आलस्य, विलासिता, दुर्व्यसन अथवा भोग-कामनाओं को स्थान मिल जाता है, तब उस जीवन का मध्य और अंत भी प्रायः अशुभ एवं असुंदर ही सिद्ध होता है ।

मनुष्य का भविष्य प्रकाशपूर्ण होगा या अंधकारपूर्ण, इसका परिचय आरम्भ की गतिविधियों से ही मिल जाता है। आरम्भ में साथ लगा हुआ थोड़ा-सा दोष, थोड़ा-सा कोई दुर्व्यसन, थोड़ी-सी चोरी की आदत, थोड़ा झूठ बोलने का स्वभाव, थोड़ी-सी कुटेव अथवा कोई भी अनुचित कुचेष्टा आगे चलकर थोड़ी न रह जायेगी । वह उसी प्रकार अपना बड़ा आकार धारण करेगी, जिस प्रकार आरम्भ में थोड़ी-सी अग्नि की चिनगारी ईंधन का संयोग पाकर भयानक रूप धारण करती है ।

यह समझने की बात है कि आरम्भ में जो

कुछ थोड़ा दिखता है, वह आगे कभी थोड़ा नहीं रह जाता। वह चाहे थोड़ा-सा दोष हो या साथ चलनेवाली कोई थोड़ी-सी भूल हो अथवा कोई थोड़ा गुण हो या सुंदर भाव अथवा सद्विचार हो या दुर्विचार।

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि सावधान होकर जो कुछ भी अशुभ, असुंदर, अपवित्र, अनावश्यक एवं अहितकर हो, उसे थोड़े से ही त्याग कर दे। जो थोड़े का त्याग नहीं कर सकता, वह अधिक का त्याग किस प्रकार करेगा ! अतः अधिक होने पर जिसका त्याग अति कष्टकर है, उसका थोड़े से ही त्याग करना सुगम है।

जो प्रत्येक कार्य के आरम्भ में आवश्यक एवं हितकर का स्वीकार करना और अहितकर का त्याग करना जानता है, उसीका जीवन आगे चलकर सुंदर और पुण्यशाली होता है।

वैसे तो बाल्यावस्था और युवावस्था का आरम्भ अपने संरक्षकों अर्थात् माता-पिता, भाई, गुरुजनों के अधिकार में रहता है, फिर भी कुछ सयाने बालक अथवा युवक आरम्भ से ही अच्छी बुद्धि से युक्त होते हैं कि जिन्हें स्वयं ही अशुभ, असुंदर, अपवित्र बातों से घृणा होती है और शुभ, सुंदर, पवित्र बातों में अनायास ही प्रीति होती है।

माता-पिता, बड़े भ्राता तथा गुरु का कर्तव्य है कि वे अपनी संतान का आरम्भ से ही किसी प्रकार की अशुद्ध, असुंदर, अपवित्र बातों से संसर्ग न होने दें। बालकों के हृदय एवं मस्तिष्क में आरम्भ से विद्याध्ययन तथा बड़ों के प्रति शिष्टाचार, सदाचार, धर्म एवं ईश्वर का महत्त्व भरना चाहिए।

आरम्भ को सुंदर बनाना, कुसंग तथा कुसंस्कार से दूषित न होने देना, शुभ कर्मों में ही शक्ति का सदुपयोग करना, धर्मतत्त्व, ईश्वरतत्त्व को जानने की अभिलाषा को प्रबल बनाना - ये सौभाग्यवानों में ही देखे जाते हैं।

मनुष्य की जीवनगति प्रकाश की ओर है या अंधकार की ओर - इसका ज्ञान दूरदर्शी एवं बुद्धिमान को आरम्भ के दर्शन से ही हो जाता है।

किसी प्रकार के आरम्भ को आलस्य और प्रमाद से बचाकर सुंदर संग से विधिवत् सँभालना ही भविष्य को सुंदर बनाना है।

प्रातःकाल नींद खुलते ही आरम्भ में ही उस परमात्मा का स्मरण कर लो, जिसकी सत्ता से तुम जी रहे हो और सब प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति का रस ले रहे हो।

दिन में कार्य आरम्भ करने की विधि को, उसकी मर्यादित गति को और दिन भर के कार्यक्रम को समझ लो। स्मरण न रहे तो आरम्भ में ही सब कार्य लिख लो।

किसीसे मिलो तो आरम्भ में सरल भाव से, प्रसन्नचित्त से, गम्भीरतापूर्वक, सुंदर शब्दों में बात करो। अधिक बनावटीपन न आने दो और भद्दापन भी मिश्रित न होने दो। किसीसे प्रीति का संबंध जोड़ो तो आरम्भ में ही अपनी चाह, अपना स्वभाव या त्रुटि उसके सामने रख दो, उसे आरम्भ में ही तैयार कर लो कि वह तुमसे यदि प्रेम करता है तो तुम्हारी त्रुटियों के साथ, भूलों के साथ, दोषों के साथ किस प्रकार निर्वाह करना होगा। उसे धोखा न दो ताकि विश्वासघात न हो।

जो कार्य आरम्भ करो, प्रारम्भ में ही उसकी पूर्ति के साधन जुटा लो; जो कुछ प्रतिकूलताएँ आ सकती हों, उनका सामना करने के लिए, अपने को सावधान करने के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता पड़ती हो, उनको साथ लिये रहो। इससे साधन के सिद्ध होने में चूक नहीं होगी। यह तो हुई व्यवहार-जगत की बात, साधना-जगत में तो इससे भी अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। ❐

गुरुभक्ति-योग

- ब्रह्मलीन स्वामी श्री शिवानंदजी

गुरुभक्तियोग का महत्त्व

✲ कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग आदि सब योगों की नींव गुरुभक्तियोग है।

✲ जो मनुष्य गुरुभक्तियोग के मार्ग से विमुख है वह अज्ञान, अंधकार एवं मृत्यु की परम्परा को प्राप्त होता है।

✲ गुरुभक्तियोग का अभ्यास जीवन के परम ध्येय की प्राप्ति का मार्ग दिखाता है।

✲ गुरुभक्तियोग का अभ्यास सबके लिए खुला है। सब महात्मा एवं विद्वान पुरुषों ने गुरुभक्तियोग के अभ्यास द्वारा ही महान कार्य किये हैं, जैसे - एकनाथ महाराज, पूरणपोड़ा, तोटकाचार्य, एकलव्य, शबरी, सहजोबाई आदि।

✲ गुरुभक्तियोग में सब योग समाविष्ट हो जाते हैं। गुरुभक्तियोग के आश्रय के बिना अन्य कई योग, जिनका आचरण अति कठिन है, उनका सम्पूर्ण अभ्यास किसीसे नहीं हो सकता।

✲ गुरुभक्तियोग में आचार्य की उपासना के द्वारा गुरुकृपा की प्राप्ति को खूब महत्त्व दिया जाता है।

✲ गुरुभक्तियोग वेद एवं उपनिषद् के समय जितना प्राचीन है।

✲ गुरुभक्तियोग जीवन के सब दुःख एवं दर्दों को दूर करने का मार्ग दिखाता है।

✲ गुरुभक्तियोग का मार्ग केवल योग्य शिष्य को ही तत्काल फल देनेवाला है।

✲ गुरुभक्तियोग अहंभाव के नाश एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति में परिणत होता है।

✲ गुरुभक्तियोग सर्वोत्तम योग है।

इस मार्ग के भय-स्थान

✲ गुरु के पावन चरणों में साष्टांग प्रणाम करने में संकोच होना, यह गुरुभक्तियोग के अभ्यास में बड़ा अवरोध है।

✲ आत्म-बड़प्पन, आत्म-न्यायीपना, मिथ्याभिमान, आत्मवंचना, दर्प, स्वच्छंदीपना, दीर्घसूत्रता, हठाग्रह, छिद्रान्वेषीपना, कुसंग, बेईमानी, अभिमान, विषय-वासना, क्रोध, लोभ, अहंभाव - ये सब गुरुभक्तियोग के मार्ग में आनेवाले विघ्न हैं।

✲ गुरुभक्तियोग के सतत अभ्यास के द्वारा मन की चंचल प्रकृति का नाश करो।

✲ जब मन की बिखरी हुई शक्ति की किरणें एकत्रित होती हैं, तब चमत्कारिक कार्य कर सकते हैं।

✲ गुरुभक्तियोग का शास्त्र समाधि एवं आत्म-साक्षात्कार करने हेतु हृदयशुद्धि प्राप्त करने के लिए गुरुसेवा पर खूब जोर देता है।

✲ सच्चा शिष्य गुरुभक्तियोग के अभ्यास में लगा रहता है।

✲ पहले गुरुभक्तियोग की फिलॉसफी समझो, फिर उसका आचरण करो। आपको सफलता अवश्य मिलेगी।

✲ तमाम दुर्गुणों को निर्मूल करने का एकमात्र असरकारक उपाय है - गुरुभक्तियोग का आचरण।

गुरुभक्तियोग के मूल सिद्धांत

✲ गुरु में अखण्ड श्रद्धा गुरुभक्तियोगरूपी वृक्ष का मूल है। उत्तरोत्तर वर्धमान भक्तिभावना, नम्रता, आज्ञापालन आदि इस वृक्ष की शाखाएँ हैं। सेवा फूल है। गुरु को आत्मसमर्पण करना अमर फल है।

✲ अगर आपको गुरु के जीवनदायक चरणों में दृढ़ श्रद्धा एवं भक्तिभाव हो तो आपको गुरुभक्तियोग के अभ्यास में सफलता अवश्य मिलेगी।

✲ सच्चे हृदयपूर्वक गुरु की शरण में जाना ही गुरुभक्तियोग का सार है। ❐

ॐ गुरुकृपा हि केवलं...

सितारों से जहाँ कुछ और भी है...

(पूज्य बापूजी की सत्संग-गंगा से)

एक महात्मा हो गये स्वामी राम । स्वामी रामतीर्थ नहीं, दूसरे स्वामी राम । अभी उनका शरीर तो नहीं है पर देहरादून में संस्था है । देश-विदेश में उनके बहुत अनुयायी थे । स्वामी राम के गुरु बड़े उच्चकोटि के संत थे । वे एकांतप्रिय थे, जिस किसीसे ज्यादा बात करना या मिलना उन्हें पसंद नहीं था ।

स्वामी राम ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि भुवाल नाम के एक संन्यासी थे, जो संन्यास-दीक्षा के पहले बंगाल की 'भवाल' रियासत के राजकुमार थे । विवाह के बाद वे अपनी पत्नी के साथ दार्जिलिंग में रहते थे । उनकी पत्नी पहले से ही किसी डॉक्टर से प्रेम करती थी लेकिन शादी हो गयी इस राजकुमार से । फिर भी वह डॉक्टर उससे मिलने आता-जाता रहा । उनकी पत्नी और डॉक्टर ने मिलकर राजकुमार को साँप के विष के इंजेक्शन (सुई) लगाने शुरू कर दिये । राजकुमार समझते रहे कि यह विटामिन की सुई लग रही है । डॉक्टर ने धीरे-धीरे विष की मात्रा बढ़ायी और कुछ महीनों बाद विष ने अपना प्रभाव दिखाया, राजकुमार की मृत्यु हो गयी । दिखावा किया कि स्वाभाविक ढंग से मृत्यु हुई है ।

राजकुमार की शवयात्रा में हजारों लोग एकत्रित हो गये । जलाने के लिए शहर से कुछ दूर एक पहाड़ी नाले के किनारे श्मशानघाट में ले गये । चिता तैयार की गयी लेकिन देव की लीला तो देखो ! एकाएक उस पहाड़ी इलाके में बहुत तेज बरसात आयी, दार्जिलिंग में तो वैसे ही कभी भी बरसात आ जाय । उस पहाड़ी इलाके में बरसात भी तेज आयी । ऐसी मूसलधार बरसात आयी कि सारे लोग भाग गये । चिता को अग्नि लगी ही थी, शव का कफन थोड़ा-बहुत जला-न जला और बरसात ने सब तहस-नहस कर दिया । बरसात के कारण पहाड़ी नाले में भयंकर बाढ़ आ गयी और वह शव उसमें बह गया ।

श्मशानघाट से तीन मील दूर स्वामी राम के गुरु अपने शिष्यों के साथ एक गुफा में ठहरे थे । उन्होंने उस कफन में लिपटे तथा बाँसों में बँधे शव को नाले में बहते देखा तो अपने शिष्यों से बोले : ''इस शव को ले आओ ।'' शव को नाले से निकालकर अर्थी की लकड़ी आदि जो बाँधी थी रस्सी-वस्सी से, वह खोली । लाश को उठाकर लाया गया । गुरुजी बोले : ''देखो, इसमें प्राण हैं, अभी यह मरा नहीं है । यह पूर्वजन्म का मेरा शिष्य है ।'' थोड़ा उपचार करके राजकुमार को उठाया लेकिन वे मौत की यह घटना, पूर्व का जीवन सब कुछ भूल गये थे । उनको गुरु ने पुनः दीक्षा दी और अपने साथ रख लिया । वे साधु बन गये । सात वर्ष तक साथ में रहे फिर गुरुजी बोले : ''जाओ बेटा ! देशाटन करो, विचरण करते-करते आगे बढ़ो । कहीं अटकना नहीं, अनुकूलता में रुकना नहीं और प्रतिकूलता को भी सत्य मत मानना । रोज अपना नित्य-नियम और भगवद्ध्यान आदि करते रहना । समय पाते सब ठीक हो जायेगा ।''

'जो आज्ञा' कहकर वे तो रवाना हुए । गुरुजी ने अपने शिष्यों से कहा : ''इसकी बहन इसे

पहचान लेगी और जब यह अपनी बहन से मिलेगा तब इसकी खोयी हुई स्मृति पुनः लौट आयेगी ।''

राजकुमार परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते हुए अनजाने में अपनी बहन के द्वार पर जा पहुँचे । बहन ने भैया को पहचान लिया और भैया का नाम लेकर पुकारा । भैया की खोयी हुई स्मृति जागृत हो गयी, उन्होंने अपनी पूरी कहानी बतायी । बात बिजली की नाईं गाँव में फैल गयी । लोग आपस में बोलने लगे कि 'राजकुमार तो मर गये थे, हम तो श्मशान में छोड़कर आये थे !'

राजकुमार के संबंधियों ने न्यायालय की शरण ली । बाबाजी ने अपने दो शिष्यों को राजकुमार की मदद में भेज दिया । शिष्यों ने भी जब सच्चाईपूर्वक बात कही तो हजारों आदमी उनके पक्ष में हो गये और कौतूहलवश हजारों आदमी दूसरे पक्ष में भी हो गये । दार्जिलिंग के न्यायालय में इतनी भीड़ कभी नहीं हुई थी जितनी इसके निमित्त हुई । लोग उत्सुक थे कि सच्चाई क्या है ?

राजकुमार योग-साधना करते थे, अपनी स्मृति के बल से स्मरण करके न्यायालय में अपना पूरा वृत्तांत बताया कि 'ऐसे-ऐसे साँप के जहर के इंजेक्शन मुझे देते थे । मैं समझता था कि विटामिन मिल रहा है । इस तरह से मेरी मृत्यु हुई, ऐसी शवयात्रा हुई । मूसलधार वर्षा हुई, शव बह गया और इस तरह से गुरुजी ने मुझे बचाया ।'

आखिर न्यायालय में यह सिद्ध हो गया कि राजकुमार की पत्नी ने अपने प्रेमी डॉक्टर से मिलकर उनको साँप के जहर के इंजेक्शन दिये थे तथा स्वामीजी ने उनको अपना पूर्व-साधक समझकर मदद की और शेष जिंदगी बचायी है ।

राजकुमार की जीत हुई और वे पुनः अपने भवाल नामक राज्य में लौट पड़े । उनके गुरुजी की यही आज्ञा थी । वे एक साल तक रहे फिर शरीर छोड़ दिया ।

इन कथाओं से यह बात सामने आती है कि तुमको जितना दिखता है, सुनाई पड़ता है उतना ही जगत नहीं है, जगत और कुछ, बहुत सारा है लेकिन यह सब अष्टधा प्रकृति के अंदर है । जब तक प्रकृति को 'मैं' मानते रहेंगे, प्रकृति के शरीर को 'मैं' मानते रहेंगे व वस्तुओं को 'मेरा' मानते रहेंगे, तब तक असली 'मैं' स्वरूप जो परमात्मा है वह छुपा रहता है और जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि की यातनाओं के कष्ट और शोक तथा राग-द्वेष, तपन में जीव तपते रहते हैं । ऐसा भी कोई है जो इन सबसे परे राग-द्वेष, कष्ट, शोक को जान रहा है । जिन्होंने अपने उस चिदानंदस्वरूप को, सत्स्वरूप को 'मैं' के रूप में जान लिया वे धन्य हैं ! उनके दर्शन करनेवाले भी धन्य हैं ! **ब्रहम गिआनी का दरसु[1] बडभागी पाईऐ ।** (गुरुवाणी)

वह लक्ष्य रखो; ऊँचा उद्देश्य, ऊँचा लक्ष्य रखो । ❑

---

१. दर्शन

सूक्ति-सुधा

✼ अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।

आलस्यरहित, अकुटिल और घोर परिश्रमी जन सफल होते हैं । **(ऋग्वेद : ४.४.१२)**

✼ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

ज्ञानयुक्त पुरुषार्थी व्यक्ति ही अभीष्ट को पा सकता है । **(ऋग्वेद : ७.३२.२०)**

✼ न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।

अवसर चूकनेवाले को श्री नहीं मिलती ।

(सामवेद, उत्तरार्चिक : ४.४.७)

✼ ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ।

बड़ों के लिए शिष्टाचार बरतो ।

जो बड़ों का मान नहीं करते वे उन्नति नहीं करते । **(अथर्ववेद :१२.२.३४)**

स्वास्थ्य अमृत

वर्षा ऋतु में स्वास्थ्य-सुरक्षा

ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक दुर्बलता को प्राप्त हुए शरीर को वर्षा ऋतु में धीरे-धीरे बल प्राप्त होने लगता है । आर्द्र (नमीयुक्त) वातावरण जठराग्नि को मंद कर देता है। शरीर में पित्त का संचय व वायु का प्रकोप हो जाता है। परिणामतः वात-पित्तजनित व अजीर्णजन्य रोगों का प्रादुर्भाव होता है। अतः इन दिनों में जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला, सुपाच्य व वात-पित्तशामक आहार लेना चाहिए।

सावधानियाँ :

१. भोजन में अदरक व नींबू का प्रयोग करें। नींबू वर्षाजन्य रोगों में बहुत लाभदायी है।

२. गुनगुने पानी में शहद व नींबू का रस मिलाकर सुबह खाली पेट लें। यह प्रयोग सप्ताह में ३-४ दिन करें।

३. प्रातःकाल में सूर्य की किरणें नाभि पर पड़ें इस प्रकार वज्रासन में बैठ के श्वास बाहर निकालकर पेट को अंदर-बाहर करते हुए 'रं' बीजमंत्र का जप करें। इससे जठराग्नि तीव्र होगी।

४. भोजन के बीच गुनगुना पानी पीयें।

५. सप्ताह में एक दिन उपवास रखें। निराहार रहें तो उत्तम, अन्यथा दिन में एक बार अल्पाहार लें।

६. सूखा मेवा, मिठाई, तले हुए पदार्थ, नया अनाज, आलू, सेम, अरवी, मटर, राजमा, अरहर, मक्का, नदी का पानी आदि त्याज्य हैं।

देशी आम, जामुन, पपीता, पुराने गेहूँ व चावल, तिल अथवा मूँगफली का तेल, सहजन, सूरन, परवल, पका पेठा, टिंडा, शलजम, कोमल मूली व बैंगन, भिंडी, मेथीदाना, धनिया, हींग, जीरा, लहसुन, सोंठ, अजवायन सेवन करने योग्य हैं।

७. श्रावण मास में पत्तेवाली हरी सब्जियाँ व दूध तथा भाद्रपद में दही व छाछ का सेवन न करें।

८. दिन में सोने से जठराग्नि मंद व त्रिदोष प्रकुपित हो जाते हैं। अतः दिन में न सोयें। नदी में स्नान न करें। बारिश में न भीगें। रात को छत पर अथवा खुले आँगन में न सोयें।

औषधि-प्रयोग

१. वर्षा ऋतु में रसायन के रूप में १०० ग्राम हरड़ चूर्ण में १०-१५ ग्राम सेंधा नमक मिला के रख लें। दो-ढाई ग्राम रोज सुबह ताजे जल के साथ लेना हितकर है।

२. हरड़ चूर्ण में दो गुना पुराना गुड़ मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। २-२ गोलियाँ दिन में १-२ बार चूसें। यह प्रयोग वर्षाजन्य सभी तकलीफों में लाभदायी है।

३. वर्षाजन्य सर्दी, खाँसी, जुकाम, ज्वर आदि में अदरक व तुलसी के रस में शहद मिलाकर लेने से व उपवास रखने से आराम मिलता है। एंटीबायोटिक्स लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। □

व्रत, पर्व और त्यौहार

२१ जुलाई : देवशयनी एकादशी, चतुर्मास व्रतारम्भ
२५ जुलाई : गुरुपूर्णिमा, व्यासपूर्णिमा, संन्यासी चतुर्मासारम्भ
२७ जुलाई : पूर्णिमांत श्रावण मासारम्भ
६ अगस्त : कामिका एकादशी
९ अगस्त : सोमवती अमावस्या
१० अगस्त : हरियाली अमावस्या
१४ अगस्त : नागपंचमी, कल्कि जयंती

बापूजी के बच्चे, नहीं रहते कच्चे !

अहमदाबाद, सरकी लीमड़ी, आगरा, भोपाल, छिन्दवाड़ा
गुरुकुलों का १०वीं की बोर्ड की परीक्षा का परिणाम शत-प्रतिशत रहा ।

संत श्री आसारामजी गुरुकुलों की छत्रछाया में विकसित हो रहे पुष्प

चिराग मछार (अहमदाबाद) खुशाल सोलंकी (अहमदाबाद) संकेत पटेल (अहमदाबाद) अक्षय पटेल (अहमदाबाद)

सन्नी साहू (छिन्दवाड़ा) तनुजा बसंतानी (छिन्दवाड़ा) भूपेन्द्र सोलंकी (छिन्दवाड़ा) विवेक रंजन (आगरा) सी.बी.एस.ई. बोर्ड

विषय	चिराग मछार	खुशाल सोलंकी	संकेत पटेल	अक्षय पटेल	सन्नी साहू	तनुजा बसंतानी	भूपेन्द्र सोलंकी	विवेक रंजन
गणित	१००	९७	९८	९८	९८	९६	९९	गणित - A-1
विज्ञान	९९	९८	९९	९४	९८	९५	८९	विज्ञान- A-1
संस्कृत	९६	९२	९६	९९	८९	९२	९३	सा. विज्ञान- A-1

विशेष : (१) अहमदाबाद गुरुकुल ने १० वीं में प्रथम वर्ष में ही शत-प्रतिशत परिणाम की उपलब्धि प्राप्त की, जिसमें ५० प्रतिशत विद्यार्थियों ने ७५ प्रतिशत से अधिक अंक (विशेष प्रवीणता) प्राप्त किये। (२) आगरा गुरुकुल के १०वीं के ४७ प्रतिशत विद्यार्थियों ने विशेष प्रवीणता प्राप्त की। (३) भोपाल गुरुकुल के १०वीं के ९४ प्रतिशत विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। (४) छिन्दवाड़ा गुरुकुल के १०वीं के ४४ प्रतिशत विद्यार्थियों ने विशेष प्रवीणता प्राप्त की । तेज प्रताप सिंह तथा प्रभाकर रंजन ने गणित में १०० में से १०० अंक प्राप्त किये। १२वीं कक्षा के ९२ प्रतिशत विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। (५) कोटगढ़ गुरुकुल का १२वीं की बोर्ड परीक्षा का परिणाम शत-प्रतिशत रहा।

अपना अनुभव भेजें

पूज्य बापूजी से प्राप्त 'सारस्वत्य मंत्रदीक्षा' व 'दिव्य प्रेरणा-प्रकाश' ग्रंथ के अध्ययन से मिली शैक्षणिक प्रवीणता या सामाजिक, चारित्रिक उन्नति के अनुभव आप बाल संस्कार विभाग, अहमदाबाद आश्रम के पते पर भेजें। अपना पता, फोटो व प्रमाण-पत्र/मार्कशीट की नकल भी संलग्न करें। आपके सत्यनिष्ठ अनुभवों से लोगों को लाभ होगा। आपका सच्चा अनुभव लाखों लोग पढ़ेंगे, आपको पहचानेंगे। उनको भी लाभ होगा। - श्रीनिवास
सम्पर्क फोन : (०७९) ३९८७७७४९. ई-मेल : balsanskar@ashram.org

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों की महिमा का पूरा वर्णन असम्भव है परंतु शास्त्र उनकी कुछ ऊँचाइयों का वर्णन कर साधकों को वैसा बनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । शास्त्रशिरोमणि 'गीता' कहती है वे **'सर्वभूतहिते रताः'** होते हैं । गीता के इस वचन का साकार रूप है पूज्य बापूजी का जीवन ।

२७ मई से १० जून तक हरिद्वार (उत्तराखंड) में पूज्यश्री का एकांतवास रहा । ऐसे दिनों में एक ओर पूज्यश्री एकांत में अपने व्यापक चैतन्य-स्वभाव में गोता लगाकर विश्वमंगल के लिए सूक्ष्म सृष्टि में रत रहते हैं तो दूसरी ओर दूर-दूर से आये भक्तों की दर्शन-सत्संग की लालसा को भी पूर्ण करते हैं । पूज्यश्री ने सत्संग में आत्मसुख, आत्ममाधुर्य का आस्वादन करने का निर्देश देते हुए कहा : ''भगवान के सुख के बिना, अंतरात्मा के सुख, ज्ञान एवं माधुर्य के बिना जीव को तृप्ति नहीं मिलती, उसकी भूख नहीं मिटती । धन की भूख, वाहवाही की भूख, दूसरे से सुख लेने की भूख... जब तक भगवत्प्रसाद नहीं मिलता तब तक यह विकारों की भूख मिटती नहीं ।''

११ जून को सोलन (हि.प्र.) में भगवदीय आनंद का प्रसाद बँटा । जीवन में भक्ति की आवश्यकता पर जोर देते हुए बापूजी ने कहा : ''जिसके मन में भगवत्प्रसन्नता नहीं है उसको शारीरिक तनाव रहता है, मानसिक तनाव रहता है और किसीको बौद्धिक तनाव भी रहता है । शारीरिक तनाववाले को सुरा और सुंदरी, पान-मसाला और पेग चाहिए । मानसिक तनाववाले को भी और कुछ चाहिए और बौद्धिक तनाववाला तो क्या-क्या करता है, तौबा-तौबा ! यह आतंक-वातंक, यह-वह बौद्धिक बीमारी का फल है ।''

ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्य बापूजी के सत्संग में हित की प्रधानता रहती है । इसमें परम हितकारी आत्मज्ञान पाने की कला के साथ कैसे बोलें, कैसे खायें, कैसे जियें, प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग कैसे करें - यह दैनंदिन जीवन में उपयोगी ज्ञान भी सबको प्राप्त होता है । **१२ व १३ जून को बिलासपुर (हि.प्र.)** में आयोजित सत्संग में वहाँ के किसानों की एक परम्परा पर प्रकाश डालते हुए पूज्य बापूजी बोले : ''यहाँ पर लोग अरवी बोते हैं । अरवी के बड़े-बड़े पत्तों की भी बहुत अच्छी सब्जी बनती है । अरवी के पत्ते फेंकने नहीं चाहिए, गाय-भैंस को खिलाने नहीं चाहिए बल्कि सब्जी में डालने चाहिए, ये बलप्रद हैं ।''

१३ व १४ जून को ऊना (हि.प्र.) में और **१४ (शाम) व १५ को गोलवाँ (हि.प्र.)** में सत्संग सम्पन्न हुआ । पूज्य बापूजी बोले : ''कलियुग में दान की बड़ी भारी महिमा है । **दानं केवलं कलियुगे ।** अन्नदान, कन्यादान, गोदान, गोरस-दान, सुवर्णदान, भूमिदान, विद्यादान और अभय दान - ये आठ प्रकार के दान हैं । लेकिन इनसे भी एक विलक्षण दान है जो सत्संग का दान है । कन्यादान लेने के बाद भी जमाई शराबी-जुआरी हो सकता है, चोर हो सकता है, हवाला कांडवाले भी होते हैं लेकिन सत्संग-दान मिलता है तो चिंतित की चिंता छूटेगी, अज्ञानी का अज्ञान छूटेगा, पापी का पाप छूटेगा, दुःखी का दुःख छूटेगा, अहंकारी का अहंकार छूटेगा और हृदय में भगवान की प्रीति आयेगी, भक्ति आयेगी, ज्ञान आयेगा । कितना बड़ा प्रसाद है !''

१६ व १७ जून को पानीपत (हरियाणा) में मुक्तिदायी सत्संग का लाभ यहाँ की जनता को मिला । यहाँ उपस्थित विशाल जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए बापूजी ने कहा : ''इच्छाओं के गुलाम मत बनो । जो इच्छाओं का उद्गम-स्थान है, जो उन्हें पूर्ण करने का स्थान है और अंत में जो ज्यों-का-त्यों रहता है, उस आत्मा को थोड़ा-सा जान लो, उस परमेश्वर को जान लो । इच्छा हुई, अब इच्छा के पीछे लगे रहे तो परेशानी हुई; इच्छा पूरी हुई तो आसक्ति होगी और पूरी होकर मिट गयी तो क्या होगा ? समय-शक्ति खराब हुए । तो इच्छा हुई तो हम परेशान हुए, इच्छा पूरी हुई तो थोड़ा हर्ष हुआ और बाद में इच्छा नहीं थी उस

समय जो हम थे वैसे-के-वैसे हो गये... तो हमको तो घाटा-ही-घाटा है इच्छाओं का दास बनने में ।''

१८ जून की शाम को जींद (हरि.) वासियों को सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पूज्यश्री के वचनामृत में आया : ''गीता का ज्ञान तुम्हें ऐरी-गैरी चीजों में आसक्ति करके भोगी नहीं बनाना चाहता, ऐरी-गैरी परिस्थितियों के गुलाम बनाकर तुम्हें जगत का पिट्ठू नहीं देखना चाहता । गीता परिवर्तन नहीं परिमार्जन करके तुम्हें सत्-चित्-आनंद, समता के सिंहासन पर देखना चाहती है ।

'गीता' कहती है कि परिवर्तन के चक्कर में मत आओ, दुःख को सुख से दबाओ मत अपितु दुःख की जड़ उखाड़ के फेंक दो । निंदा को प्रशंसा से दबाओ मत, निंदा की गहराई में और प्रशंसा की गहराई में तुम एकरूप हो - ऐसे ज्ञान की समझ जगाओ । बीमारी में और तंदुरुस्ती में तुम एकरस हो । बचपन, जवानी, बुढ़ापा यह सब बदलता है फिर भी जो नहीं बदलता, वह है तुम्हारा अपना-आप, हर परिस्थिति का बाप !''

१९ व २० जून को रोहतक (हरियाणा) में सत्संग सम्पन्न हुआ । यहाँ के निवासियों को हँसते-खेलते बहुआयामी जीवन जीने के सुखद, आनंददायी तरीके बताते हुए बापूजी बोले :

''नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ
खावंदिआ विचे होवै मुकति ॥

शिवजी कभी समाधि करते हैं तो कभी डमरू बजाकर नृत्य करते हैं । जीवन में शांति, समाधि भी होनी चाहिए तो नृत्य और उल्लास भी होना चाहिए, व्यवहार भी होना चाहिए और व्यवहार से विश्रांति भी होनी चाहिए, धर्म भी होना चाहिए और अर्थ भी, कामनापूर्ति भी होनी चाहिए, कामनापूर्ति-अपूर्ति में समता भी होनी चाहिए और मोक्ष का मार्ग भी चमकना चाहिए ।''

२१ व २२ (सुबह) जून को हिसार (हरि.) में सत्संग हुआ । जनसामान्य को मृतात्मा की सद्गति का शास्त्रों में वर्णित सुंदर, सरल उपाय बापूजी ने बताया : ''मृत व्यक्ति की हड्डियाँ कोई गंगा में न डलवा सकें तो आँवले के रस से धोकर किसी भी नदी में डाल देंगे तो भी सद्गति होती है । (स्कंद पुराण) और मरते समय तुलसी के पत्ते या तुलसी के पत्तों का पानी मुँह में नहीं डाल सकें तो गाय का दही भी मुँह में डालेंगे तो भी सद्गति होगी ।''

२२ व २३ जून को भिवानी (हरि.) में सत्संग हुआ । हिसार, भिवानी में तपती धूप से ४७ से ४९ डिग्री के बीच तापमान था पर सत्संगियों की तितिक्षा, तपस्या और भीड़ देखते ही बनती थी । यहाँ निर्द्वन्द्व जीवन की कुंजी देते हुए बापूजी ने कहा : ''चाहे कोई रोग आ जाय, कोई आपदा आ जाय, कोई कठिनाई आ जाय, हिम्मत न हारो । रोग शरीर को है, दुःख मन को है, राग-द्वेष बुद्धि में है किंतु जीवात्मा तो परमात्मा का था, है और रहेगा । साकार में झंझट है, निराकार तो निर्द्वन्द्व है, निर्दुःख है, निःशोक है । हम निराकार हैं । मरते समय जीव कौन-सी आकृति का होता है यह खोजते-खोजते विज्ञानी झख मार के बैठ गये । दिखे तो आकृति दिखेगी, निराकार की आकृति क्या !''

इस बार पूर्णिमा-दर्शन का पर्व **२४ जून को पूना, २५ व २६ (सुबह तक) जून अहमदाबाद तथा २६ (दोपहर से) व २७ जून को दिल्ली** - इस तरह ३ जगहों पर सम्पन्न हुआ । दिल्ली में मानवीय चित्त में छिपे सामर्थ्य से परिचित कराते हुए उसे सारस्वरूप आत्मचैतन्य में लगाने की प्रेरणा देते हुए बापूजी बोले : ''चित्त चिंतन करके तदाकार होने का सामर्थ्य रखता है । दुःख का चिंतन करने से आदमी पूरा दुःखी हो जाता है । शत्रु का चिंतन करने से उसीके स्वभाव का बन जाता है ।

चित्त नारी को ध्यावे तो नारीरूप भयो है ।
चित्त विषयन को ध्यावे तो विषयनरूप भयो है ।
चित्त चेतन को ध्यावे तो चेतनरूप भयो है ।

तो अपने चित्त को भगवद्स्वभाव में लगाओ । आप चित्त को काम में लगाते हैं, क्रोध में लगाते हैं, लोभ में लगाते हैं, मोह में लगाते हैं तो चित्त विक्षिप्त रहता है और आप बहुत छोटे व्यक्ति हो जाते हैं परंतु चित्त को किसी एक सार विषय में लगाते हैं तो आप ऊँचे, प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी हो जाते हैं ।'' ❒

भक्तों के अनुभव

मंत्र ले गया रोग, बंदर ले गये दवा

मैं काफी दिनों से ब्लडप्रेशर, डायबिटीज एवं कोलेस्ट्रॉल से पीड़ित था । कुछ ही कदम चलने पर मैं पसीने-पसीने हो जाता था । कंधे भी जकड़े हुए थे, शरीर टूटता था । चिकित्सकों ने मुझे पूर्णरूप से आराम करने की सलाह दी थी परंतु मैं एक समाजसेवी संस्था का संचालन करता हूँ, इससे आराम करने में असमर्थ था । मैंने गुरुपूर्णिमा पर्व पर अहमदाबाद आश्रम में जाकर पूज्य बापूजी के दर्शन करने का विचार किया। परिचितों व चिकित्सकों ने मेरी हालत को देखते हुए न जाने की सलाह दी परंतु मैं जिद करके अहमदाबाद आश्रम गया । वहाँ मुझे कई बार चक्कर आये और मेरी हालत नाजुक हो गयी । अंतर्यामी गुरुदेव शिष्य की व्यथा को समझ गये और लाखों लोगों के बीच से मुझे व्यासपीठ के पास बुलाया । दूसरे की पीड़ा न देख सकनेवाले गुरुदेव ने मेरा हालचाल पूछा । मैंने सब व्यथा कह दी । बापूजी ने मंत्र दिया और कहा : 'मंत्र का प्रतिदिन एक माला जप करना, प्राणायाम करना, सवेरे घूमने जाना और १५ से १७ मिनट सूर्य की किरणें शरीर को लगें ऐसे सूर्यस्नान करना ।'

मैंने उनके निर्देशानुसार नियम से जप, प्राणायाम, सूर्यस्नान और घूमना शुरू किया तो मुझे लाभ होने लगा । एक दिन मैं घूमने गया था, घर आया तो पत्नी ने बताया कि 'लाल मुँह के चार बंदर आये और सारी दवाइयों का पॉलिथीन उठा के ले भागे ।' दूसरी बार दवा ले आया तो फिर से बंदर आकर दवाइयाँ ले भागे । ऐसा ४-५ बार हुआ । सभीको इस घटना से बड़ा आश्चर्य हुआ परंतु मुझे तो इसमें मंत्र का प्रभाव साफ दिखायी दे रहा था । नासै रोग... हनुमानजी का मंत्र था और हनुमानजी की सेनावाले आये ।

मेरी हालत में निरंतर सुधार आता गया । गुरुदेव की कृपा से मैं आज एकदम तंदुरुस्त हूँ । मैं ऐसे भगवद्स्वरूप गुरुदेव के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे चिरंजीवी हों और उनकी इस लोक-मांगल्य की पावन सरिता का लाभ विश्वमानव को मिलता रहे । **- कमल किशोर खन्ना, अजमेर (राज.)।**

मो. : ९५८७२९७८२०. ❑

* पूज्य बापूजी के सान्निध्य में गुरुपूर्णिमा महोत्सव *

दिनांक	स्थान	सत्संग-स्थल	सम्पर्क
१ से ११ जुलाई (सुबह ८ तक)	जयपुर (राज.)	अमरूदों का बाग-A, अम्बेडकर सर्कल	९४१४२३११०६, ९८२९०४६७१६.
११ जुलाई	कोलकाता	संत श्री आसारामजी आश्रम, पुलिसपाढ़ा गरिया स्टेशन, २४ परगना (द.)	०३३-२४३६७२८०, ३२५२५२६०.
१२ (शाम) व १३ (सुबह)	भुवनेश्वर (उड़ीसा)	जनता मैदान, होटल स्वस्ति प्लाजा के पास, चन्द्रशेखरपुर	९९३७९९३५०६, ९४३७२३००५७.
१४ (शाम) से १५	रायपुर (छ.ग.)	साइंस कॉलेज मैदान	९४२५२५४४१३, ९४२५२०४०११.
१७ व १८ (दोपहर तक)	भोपाल (म.प्र.)	संत श्री आसारामजी आश्रम, गांधीनगर बाय-पास	९४२५००१२५२, ९८२७३३९१२२.
२३ (दोप.) से २५ (दोप.)	दिल्ली		०११-२५७६४१६१, २५७२९३३८.
२५ (दोपहर) से २७	अहमदाबाद	संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती	(०७९) ३९८७७७८८, २७५०५०१०-११.

विशेष सूचना : गुरुपूर्णिमा महोत्सव में अहमदाबाद आनेवाले भक्तों के लिए रेलवे स्टेशन से आश्रम आने-जाने हेतु वाहन-व्यवस्था की गयी है । यह सुविधा अहमदाबाद के दोनों स्टेशनों - साबरमती तथा कालुपुर (कालुपुर गेट नं. २, प्लेटफार्म नं. १) पर उपलब्ध रहेगी । मीटर गेज की अधिकतर गाड़ियाँ और ब्रॉड गेज की कुछ गाड़ियाँ साबरमती रेलवे स्टेशन पर रुकती हैं । साबरमती रेलवे स्टेशन कालुपुर की अपेक्षा आश्रम के नजदीक है इसलिए साबरमती स्टेशन पर रुकनेवाली गाड़ियों का लाभ लें ।

सम्पर्क : 9825303862, 9638105291, 9429209170.

श्री शुकदेवजी व सत्शिष्य राजा परीक्षित

समर्थ रामदासजी व सत्शिष्य कल्याण

तू गुलाब होकर महक,
तुझे जमाना जाने...

गुरुकृपा हि केवलं
शिष्यस्य परं मंगलम्।

नाथ-परम्परा

चैतन्य महाप्रभु
व उनके सत्शिष्य

भगवत्पाद सद्गुरु श्री श्री लीलाशाहजी महाराज
व परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

आद्य शंकराचार्यजी व उनके सत्शिष्य

गुरु नानकजी व सत्शिष्य बाला, मरदाना

बापू के सत्संग में झूमे सत्संगी, छाया भक्ति-प्रेम का रंग, हुआ भरम-भेद का भंग।

भिवानी (हरि.)

हिसार (हरि.)

पानीपत (हरि.)

बिलासपुर (हि.प्र.)

गोलवाँ, जि. काँगड़ा (हि.प्र.)

रोहतक (हरि.)

RNP. No. GAMC 1132/2009-11
(Issued by SSPOs Ahd, valid upto 31-12-2011)
WPP LIC No. CPMG/GJ/41/09-11
RNI No. 48873/91
DL (C)-01/1130/2009-11
WPP LIC No. U (C)-232/2009-11
MH/MR-NW-57/2009-11
MR/TECH/WPP-21/NW/2010
'D' No. MR/TECH/47.4/2010

भिवानी की जनता हुई दीवानी तो हिसार ने किया दिल निसार।
पानीपत में बरसा सत्संग का अमृत, बिलासपुर में छाया उल्लास तो गोलवाँ और रोहतकवासी भी हुए बागबाग।

Posting at PSO Ahmedabad between 1st to 17th of every month. * Posting at ND PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.